CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

7.1

भरतनिधि, कचौड़ी
वाराणसी-5

ध्रुवपद-समीक्षा

भरत व्यास

...न्थालय
वाराणसी-५
3/70

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ध्रुवपद-समीक्षा

WITH BEST COMPLIMENTS
VISHWAVIDYALAYA
PRAKASHAN
CHOWK, VARANASI-1
PH: 64741, 66982

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ध्रुवपद-समीक्षा

आ: ३/७०
आम्नाय-ग्रन्थालय,
भरतनिधि, करौंदी
वाराणसी-5

भरत व्यास

उत्तर प्रदेश संगीत नाटक अकादमी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

आम्नाय-ग्रन्था. यं,
भरतनिधि, करौंदा
वाराणसी-5

DHRUVPAD SAMEEKSHA (Music) : Bharat Vyas

मूल्य : 12-00 रुपया

© प्रकाशकाधीन

प्रथम संस्करण : 1980

प्रकाशक : डा० समर बहादुर सिंह,
सचिव, उत्तर प्रदेश संगीत नाटक अकादमी,
कैसरबाग, लखनऊ-226001

मुद्रक : गर्ग प्रिन्टर्स, ऐशबाग, लखनऊ

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

आम्नाय-ग्रन्थालय,
भारतनिधि, करौंदी
वाराणसी-5

अकादमी की ओर से

मध्यकालीन भारत की अनूठी उपज–'ध्रुवपद'। हिन्दुस्तानी संगीत का कंठहार। स्वर, ताल एवं साहित्य की अद्भुत त्रिवेणी। राजा मानसिंह तोमर, बैजूबावरा, स्वामी हरिदास और तानसेन की बहुमूल्य थाती।

हिन्दुस्तानी संगीत-पद्धति में ध्रुवपद-गायन शैली का प्रमुख स्थान है। इस गीत की उत्पत्ति कब और कैसे हुई, यह विवादग्रस्त है। किन्तु अधिकांश सहमत हैं कि इस शैली का आविर्भाव, संस्कृत के ध्रुवा-प्रबंध से हुआ। ग्वालियर के शासक राजा मानसिंह तोमर के दरबार में इसे बड़ा प्रश्रय मिला। निखरती-सँवरती यह गायन शैली बैजूबावरा, स्वामी हरिदास तथा तानसेन जैसे प्रतिभा-सम्पन्न गायकों के हाथों अपनी पराकाष्ठा पर पहुँच गयी और लगभग 500 सालों तक हिन्दुस्तानी संगीत पर इसका एकछत्र साम्राज्य बना रहा। इस युग में गायन की अन्य शैलियां भी थीं, किन्तु शास्त्रीयता की दृष्टि से ध्रुवपद शैली उन सबमें प्रमुख थी।

मुगल-काल के अवसान के साथ ही ध्रुवपद शैली भी धीरे-धीरे लुप्तप्राय होने लगी। खयाली दुनिया की उपज 'खयाल' की कल्पनाभरी अभिव्यंजनाओं के सम्मुख वह उतना लोकप्रिय न हो सका। ठुमरी के प्रादुर्भाव ने सांगीतिक कल्पना के नये द्वार खोल दिये। खयाल-ठुमरी की जोड़ी के सामने ध्रुवपद-धमार की जोड़ी कुछ हतप्रभ-सी होने लगी।

हिन्दुस्तानी संगीत में ध्रुवपद का विशिष्ट स्थान रहा है, रहेगा। इसकी प्रस्तुति के प्रारम्भ की विविधता भरी आलापकारी, फिर गायन की चमत्कारी, लयदारी तथा इसकी मनोहारी उपज आदि सांगीतिक विशिष्टतायें तो उसमें हैं ही, उसका साहित्यिक सौष्ठव भी कुछ कम नहीं। ध्रुवपद में यदि एक ओर भक्ति रस की प्रवणता है तो दूसरी ओर वीर रस की प्रेरणा। यदाकदा श्रृंगार का पुट इसे और मर्मवेधी बना देता है। राग के सच्चे स्वरूप की अभिव्यक्ति में यह गायन शैली अप्रतिम है।

ऐसी गौरवमयी परम्परा का पुर्नप्रतिष्ठापन आज के हिन्दुस्तानी संगीत की महान् आवश्यकता है। इसकी संरचना में साहित्य और संगीत का जो अद्भुत समन्वय है, वह अन्य शैलियों में उपलब्ध नहीं। ध्रुवपद का गांभीर्य, उसका स्वर

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

और ताल पर अधिकार और उसका मनोहारी सौन्दर्य यदि यों ही विलीन होने दिया जायेगा तो हिन्दुतानी संगीत विकलांगी हो जायेगा।

हिन्दुस्तानी संगीत का उन्नयन तथा प्रचार-प्रसार हमारी अकादमी का प्रमुख उद्देश्य है। श्री भरत व्यास की ध्रुवपद-समीक्षा उस उद्देश्य की प्राप्ति की दिशा में एक प्रमुख प्रयास है। हमें आशा है कि इस पुस्तक के प्रकाशन से ध्रुवपद के बारे में लोगों को आवश्यक जानकारी मिलेगी और वे अपनी इस निधि से सुपरिचित हो सकेंगे।

—समर बहादुर सिंह

आम्नाय-ग्रन्थालय,
भरतनिधि, करौंदी
वाराणसी-5

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

...नाय-ग्रन्थालय,
भरतनिधि, कचौड़ी
वाराणसी-5

क्रम

ध्रुवपद परिचय 1
ध्रुवपद-धमार का इतिहास 4
ध्रुवपद-गायकी के सिद्धान्त 8
ध्रुवपद-गायन का प्रादुर्भाव और उसकी परम्परा 23
ध्रुवपद-गायन के लिए आवश्यक योग्यताएं 35
ध्रुवपद-शिक्षा का शास्त्रीय महत्व 55
गेय-गीतों के उदाहरण 96
लेखक का निजी विचार 105

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पहला प्रकरण

ध्रुवपद परिचय

ध्रुवपद शब्द की परिभाषा करते समय प्राचीन ग्रन्थकारों में श्री भावभट्ट ने अपना जो विचार 'भावप्रकाश' नामक संस्कृत भाषा के ग्रन्थ में उद्धृत किया है, उस पर सभी लोग अपने सिद्धान्तों को मान्यता देकर उनके मार्ग पर चल पड़े। ऐसा देखने-सुनने में आता है। भावभट्ट और उनके 'अनूपविलास' ग्रन्थ में ध्रुवपद-चर्चा इस प्रकार है :

गीर्वाण मध्यदेशीय भाषा साहित्य राजितम्।
द्विचतुर्वाक्य संपन्नं नरनारी कथाश्रयम् ॥
शृंगाररस भावाद्यं रागालाप पदात्मकम्।
पादान्तानुप्रासयुक्तम् पादान्तयुगकं च वा ॥
प्रतिपाद यत्र वद्धमेवं पादचतुष्टयम्।
उद्ग्राह ध्रुवकाभोगान्तरं ध्रुवपदं स्मृतम् ॥

उपर्युक्त प्रमाण ध्रुवपद शब्द की अर्थ-विशेषता, रचना, साहित्य आदि के दृष्टिकोण से एक सर्वमान्य सिद्धान्त है। किन्तु परिवर्तनशील जगत् के परिवर्तित संगीत-क्षेत्र में इस श्लोक की सार्थकता सभी ध्रुवपदों में पूर्णरूप से सिद्ध नहीं हो सकती है, न इसके अनुसार स्वर-शब्द के रचयिता वाग्गेयकार लोगों ने इसका अनुसंधान करने की सफल चेष्टा ही की और न इसके अनुसार ध्रुवपदों की कलात्मकता से पूर्ण, स्वर-शब्दों से युक्त ध्रुवपदों की अधिक संख्या ही प्राप्त है। पाठक ऐसी कल्पना कर सकते हैं कि न तो वे ध्रुवपद ही कहे जा सकते हैं, न उनको ध्रुवपद की श्रेणी में रखना या ध्रुवपद कह कर मान्यता देना उचित है। क्योंकि जब ध्रुवपद शब्द के नाम-रूप के लिए किसी विद्वान् ने एक सिद्धांत को प्रमाणरूप में लिखा है, तो उसके अनुसार जब तक रचना पूर्ण रूप से न हुयी हो, उसे उसकी नामवाची संज्ञा या स्थान देना विद्वानों के मत की अवहेलना करना ही प्रतीत होगा। परन्तु मेरे विचार से और ध्रुवपद के क्रिया-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

शील सिद्ध गायकों की रचनात्मक दृष्टि से उपर्युक्त श्लोक में ध्रुवपद का पूर्ण वर्णन नहीं मिलता। यह कहना भी अतिशयोक्तिपरक होगा कि जिन लोगों की महती साधना के फलस्वरूप ध्रुवपद शब्द के आत्मस्वर का प्रत्यक्षीकरण हुआ और जिनकी वाणी के माध्यम से कला ने अपने में क्रियात्मक श्रेष्ठता भर कर, स्वर शब्दों से निज अंगों को सुसज्जित कर, अपना रूप प्रकट किया उनकी रचनाओं के सामने उक्त श्लोक मात्र किसी एक प्रकार के ध्रुवपद की रचना का एक अंग बन कर ही रह गया।

वस्तुतः श्लोक में, 'गीर्वाण' यानी संस्कृत भाषा, तथा 'गीर्वाण मध्यदेशीय भाषा साहित्य राजितम्' पंक्ति के अनुसार, गीर्वाण (संस्कृत) तथा मध्यदेशीय भाषायुक्त साहित्य में गीत हो; 'द्विचतुर्वाक्य संपन्नं', दो से चार तक वाक्य हों; 'नरनारी कथाश्रयम्', किसी नर या नारी की कथा का आश्रय हो; तथा जिस कथा का वर्णन हो, उद्ग्राह, ध्रुव, आभोग तथा अंतरा इस प्रकार उसके चार पादखंड हों, उसे ध्रुवपद कहते हैं। या, यह ध्रुवपद का लाक्षणिक प्रमाण है।

संस्कृत में बहुत कम ध्रुवपद प्राप्त होते हैं। संस्कृत मिश्रित मध्यदेशीय मध्य-प्रान्त उत्तर भारत के व्रज, अवध, काशी, प्रयाग और भृगु क्षेत्र तक की बोली में भाषा युक्त ध्रुवपद अधिक मिलते हैं। यदि शास्त्र ने 'गीर्वाण' पृथक् और 'मध्यदेशीय भाषा साहित्य राजितम्' कहकर पृथक् संकेत किया है, तो व्रजभाषा में ध्रुवपदों की रचना बहुत अधिक है। प्रसिद्ध उक्ति 'नरनारी कथाश्रयम्' में मेरी मान्यता उसी सीमा तक है जहाँ तक कि देवगणों की स्तुति अथवा किसी श्रेष्ठ राजा की गाथा हो। सार्वजनिक नारियों और नरों की कथा ध्रुवपद की विशेषता नहीं कही जा सकती। अतः ग्रन्थकर्त्ता इसे स्पष्ट नहीं कर पाया है।

प्रायः साहित्य अंग से गीत का साहित्य संक्षेप में ही लिखना गीतकार की वास्तविक सफलता का द्योतक माना जाता है। उद्ग्राह, ध्रुव, आभोग, अंतरा यह पाद-खंड ही ग्रन्थकार ने लिखे हैं। किन्तु कभी-कभी दो और कभी पाँच पंक्तियों के पाद-खण्डों के अतिप्राचीन ध्रुवपद भी पाये जाते हैं। संभव है, यह ध्रुवपद प्रबन्ध हों। श्लोक में निर्दिष्ट विषय ध्रुवपद के शृंगार रस के ही पोषक हैं, और वह भी मानवी। किन्तु उत्तम कोटि के अनेक ध्रुवपद ऐसे हैं जिनमें इस श्लोक के भाव से पृथक् वर्णनों का समावेश मिलता है, जैसे—

(1) नाद विधा का वर्णन,

(2) स्वर-श्रुतियों का प्रयोगात्मक वर्णन, तथा

(3) वीणा के तत्वों का कंठ-साधना द्वारा प्रमाण, आदि ताल विधा का भेद।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तात्पर्य यह है कि ऐसी कलात्मक गवेषणा को लेकर जो ध्रुवपद लिखे गये हैं वे श्लोक के भावों से सर्वथा भिन्न हैं।

तीसरी बात यह है कि केवल शिव के स्वरूप का वर्णन या गणपति का वर्णन भी 'नरनारी कथाश्रयम्' से भिन्न ध्रुवपद की स्वतन्त्र चेतना को प्रमाणित करता है। मेरी अपनी धारणा के अनुसार, ध्रुवपद शब्द का अर्थ यह है कि जिसका सिद्धांत सदा ध्रुवनाम अचल हो। अथवा, गायन शैली की प्रणाली में स्वर-प्रयोग ध्रुव-सा प्रमाणित हो। एक अटल सिद्धांत को कहने या गीतों में गायी जाने वाली प्रामाणिक प्रणाली को ध्रुवपद कहना अधिक उचित होगा।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

दूसरा प्रकरण

ध्रुवपद-धमार का इतिहास

ध्रुवपद-धमार के प्रादुर्भाव का इतिहास कबसे आरंभ हुआ, यह लिखना कुछ कठिन है। क्रमानुसार गीत की परंपरा का अध्ययन और ध्रुवपद की उत्तरोत्तर प्राचीन रचना तक यदि हम पहुँचें तो ऋचा से छंदगान और छन्द से प्रबंध की शृंखला पर ही ध्रुवपद अपनी तीसरी सीढ़ी नियत करता पाया जाता है। ऋचाओं का वैदिक काल तथा छंदों का पौराणिक काल और इसी के साथ प्रबंध और ध्रुवपद-प्रबंधों की कड़ी जुड़ी हुई है—जैसे कि दो हजार वर्ष या उससे भी पूर्व छंदगान का वृहत विस्तार माना जाता है और आज के समय से पंद्रह सौ वर्ष पूर्व भी साधारण रूप में क्वचित् गायन-मर्मज्ञ यदाकदा मुख्य स्थानों पर छंद अथवा ऋचागान गाते पाये जाते थे। काश्मीर, मिथिला, मुल्तान, उड़ीसा, वंग एवं दक्षिण भारत के समस्त संगीत-केन्द्र इसी के उपासक थे।

जयदेव का 'गीत-गोविन्द' समस्त उत्तर भारत से लेकर दक्षिण की सीमा तक उन्हीं राग-तालों में गाया जाता था जिनमें वे अपने कर्त्ता के द्वारा रचे गये थे। इसी प्रकार विद्यापति की गान-प्रणाली 'मैथिली' की उससे भिन्न स्वर-रचना तथा भावोद्गारयुक्त प्रांतीय भाषा की सुकोमल पंखुरियों से सजी हुई संगीत-लहरी नेपाल की सीमा तथा हरिद्वार से लेकर बंग की समस्त हरित भूमि तक नववधुओं के कोमल कंठों से गुंजरित होती थी। इन दोनों के समान तीसरी गीत-परंपरा हरि आचार्य कृत 'श्री जानकीगीतम्' की प्रणाली में मिलती है, जो उत्तर और दक्षिण के केवल संगीत-कलाविद् गायकों के मुख से ही सुनने में आती थी। किन्तु यह गीत-योग्य संस्कृत काव्य गौड़ी शैली में था। उपर्युक्त तीनों ही गीत-प्रणालियाँ छंद-गान एवं प्रबंध-गान की युगलवंदी में रची पायी जाती हैं। ध्रुवपद-गान की यह तीसरी कड़ी इन दोनों की भाव-भाषा एवं स्वर-व्यंजना को लेकर रची गयी है। प्रवन्ध-गान के साथ में 'ध्रुवम्' शब्द सदा उसकी प्रथम पंक्ति के साथ जुड़ा रहता था। मेरे विचार में यह शब्द आगे चलकर अपने नाम की पुष्टि हेतु नवीन गीत-प्रणाली-परंपरा निश्चित करने में सफल हुआ है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

'ध्रुव' अर्थात् अचल और 'पद' अर्थात साहित्योक्तियाँ—इन्हीं दोनों की सम्मिलित संज्ञा ध्रुवपद है। किन्तु यह शब्द साहित्य के सुबोध रचनाकार को अनावरण न कर मात्र स्वर, लय, ताल, कला-विशेषज्ञ साहित्यसार कोविद द्वारा उपर्युक्त गान्धर्व कला-विधा के यथोचित अलंकारों से पूर्णता पाने पर ही अपने नाम का यथार्थ बोध कर पाने में सफल होता है। यही इसकी अपनी एक विशेषता है, अथवा होनी चाहिए। अतः ध्रुवपद का यह इतिहास सही है कि हरि आचार्य कृत 'श्री जानकीगीतम्' और महाकवि गायकवर जयदेव कृत 'गीत-गोविन्द' का गीति-काव्य—जिसमें ध्रुवपद के स्थाई-अन्तरा-संचारी और आभोग के पादखण्ड क्रम में हैं—संस्कृत का ऐतिहासिक ध्रुवपद-गान ही है।

यह सत्य है कि ये दोनों गायनाचार्य वाग्गेयकार क्रमशः राम और कृष्ण की भक्ति को लेकर ही अपना सारा गीति-काव्य प्रस्तुत करते हैं; किन्तु कई गीतों में प्रौढ़ सांगीतिक परिपाटी के वाद्य-यंत्रों का विधान, कला-क्रिया-निरूपण, विवेचन आदि भी बड़े गम्भीर रूप में प्रस्तुत हुआ है। अतः यह केवल भक्तिपरक गान है, ऐसा मानना नितान्त भ्रमात्मक और अयुक्तियुक्त हठ है।

महर्षि विश्वामित्र के परमप्रिय शिष्य महर्षि कौत्स को 'चतुर्दश विधानिधि अष्टसिद्धिवान् भव' का एक ही वचन आशीष में प्राप्त हुआ था। उन्होंने 'ब्रह्मज्ञानरसायनं स्वरधरं' के अनुसार चौदह विद्याओं का क्रम निर्धारित किया है, जिसमें स्वर-विद्या को ब्रह्मविद्या और नाद को ब्रह्म सिद्ध किया है। नाद-साधक को नादीय, नाद-ब्रह्मज्ञ, ब्रह्मानन्द-सहोदर, आदि कहकर इस नादीय गान-गीति की रीति की व्याख्या की गयी है।

इस प्रकार यदि ब्रह्म की ही कीर्ति का वर्णन गीति-कृति में न होगा, तो फिर किसका हो सकता है, जिसके आधार-प्रमाण को लेकर गायक को ब्रह्मानंद-सहोदर किंवा नादज्ञ, नाद-ब्रह्मज्ञ कहलाने का सार्थक यश प्राप्त हो सके ? अतः जब तक ब्रह्म को ही लक्षित कर उसी के परत्व की गाथा का गान न होगा तब तक गायक को नाद-ब्रह्म के गायक कहलाने का कोई अधिकार भारतीय सांस्कृतिक शास्त्रीय संगीत-गान के कलाकोविदों के बीच कम-से-कम उस पुरातन काल में तो प्राप्त नहीं हो सकता था।

आजकल जातिगान की चर्चा चल रही है। शास्त्र उस जातिगान के विषय में कहता है—

शुद्धाः स्युर्जातयः सप्तताः षड्जादि स्वरभिधाः
षाड्ज्यार्षभीच गान्धारी मध्यमापञ्चमी तथा,
धैवतीचाथ नैषादी शुद्धतालक्ष्मकथ्यते ॥ 1 ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

यासांनाम स्वरोन्यासोऽपन्यासोंऽशोग्रहस्तथा
तारन्यास विहीनास्ताः पूर्ण शुद्धाभिधामताः ॥ 2 ॥

इस प्रकार तारन्यास के अतिरिक्त सप्त स्वरादिकों से युक्त ग्रहन्यासादिकों के स्वर पर ही जातिगान का सारा अस्तित्व निर्भर करता है। इस सम्बन्ध में दूसरा प्रमाण भरतादिकों के मत में निम्नवत् मिलता है—

वर्णाद्यिलंकृता गानक्रियापदलयान्विता—
गीतिरित्युच्यते सा च बुधैरुक्ताचतुर्विधा,
मागधी प्रथमागेया द्वितीयाचार्धमागधी—
सम्भाविता च पृथुलेत्येतासां लक्ष्मचक्ष्महे ॥

इसी के वाक्य-प्रमाण में ध्रुवपद के रूप में वह गुह्यतम ऐतिहासिक कलाकृति है जिसके आधार पर तब से अब तक इसके शब्दार्थों से विज्ञजनों के द्वारा ध्रुवपद की चारों रीति-गीति वाणी के रूप में क्रियान्वित हो कृति के रूप में रचित होती रही। उपर्युक्त श्लोक में ही स्वराधार शब्द लय-वर्णों के क्रमों में करने का विवरण है और यावनिक प्रथा के प्रायः सभी ध्रुवपद इसी के आधार पर निर्मित होते रहे हैं क्योंकि गान की क्रिया के पदों की रचना लयान्वित आधारिक गुणों से वेष्टित कर देने के बाद ही गीति का वह नाम-प्रकार ध्येय से पूरित होगा। इसी आदर्श को लेकर प्रायः सभी गायन की प्रणालियों के अन्तर्गत आज के वर्तमान समय में जो भी पुराने ध्रुवपद शिक्षित गायकों द्वारा सुनने में आते हैं, कदाचित् उनके स्वर-शब्द समान ही हैं। यह कथन इस तथ्य का प्रमाण है कि आज से पाँच सौ वर्ष पूर्व सारे भारतवर्ष की गायन-प्रणाली देशीयता के अतिरिक्त एक ही थी।

गायन की नयी प्रणाली का इतिहास स्वर और शब्द-रचना में, जहाँ तक मुझे विश्वास है और जो उपर्युक्त ध्रुवपद प्रबंधों की शृंखलाबद्ध रचनाओं में प्राप्त होता है, जहांगीर के काल तक उत्तर और दक्षिण की तुलना में क्वचित् ही अंतर बतलाता है। किन्तु, वह छोटी-सी दरार, जो अकबर के काल में उत्तर और दक्षिण के बीच में पड़ गयी थी, नदी के दो किनारों की भाँति संगीत-प्रणाली में स्पष्ट दिखाई देती है। उदाहरणार्थ एक प्रबंध देखिये—

रघुकुल कमल विभाकर सुखसागर हे !
निज जनमानसवासं जय जय दशरथे !!
नील नलिन रुचि सुंदर गुणमंदिर हे !
पीतवसन मृदुहासं जय जय दशरथे !!

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

यह पद वहुत बड़ा है और रामानंद स्वामी के गुरु राघवानन्द, तथा उनके गुरु हरिआनंद जी, जिन्हें हरि आचार्य भी कहा जाता था, द्वारा रचित है। रामानंद स्वामी से ही उनके गुरु के गुरु का समय-काल निर्धारित करना ऐतिहासिक प्रमाणों से स्वयं सिद्ध है; तथापि हस्तलिखित प्रतिलिपियों में उनके गीत मैंने प्रसिद्ध इतिहासकार डॉ० भगवत शरण उपाध्याय को सन् 1946 में दिखलाये थे। उन्होंने सभी गीतों की भाषा का शोध कर इन्हें जयदेव से पचास वर्ष पूर्व का गीतकार माना है।

इसी प्रकार विद्यापति के गीतों को देखें—

चानन लाग विषम सर हे, भूषन भेल भारी।
जाह ऊधो तव मधुपूर हे, तोहे तकन मुरारी।
हेर इत से धनि थोर, अवतिन भुवन अगोर।.
पुनि किये दरशन पाव, अब मोहे इन दुःख जाव॥
विद्यापति तुव गुन देहव आन॥

प्रसिद्ध है कि विद्यापति, सूरदास से पूरे 150 वर्ष पहले हुए थे; फिर भी,

नव वृन्दावन नवनव तरुवन, नवनव विकसित फूल,
नवल वसंत नवल मलयानिल मातल नव अलिकूल॥

इस रचना के अनुसार और इसके कंधे से कंधा जुड़ाने वाले ध्रुवपदज्ञों में प्रसिद्ध तानसेन, बैजू, गोपाललाल, मदन राय, रामदास, नायक चरजू, धोंधी, प्रेमदास, छवि नायक, लीलावती आदि की रचनाएँ समानता रखती हैं। यहाँ पर मेरा अभिप्राय ध्रुवपद की भाव-भाषा तदनुकूल स्वर-रचना, लयताल के परिमाण, और गायन-प्रणाली की तुलना करते हुए ऐतिहासिक दृष्टि से इन्हीं को सिद्ध करना है। मैं पहले ही कह चुका हूँ कि रागों की, स्वरों की, गायकियों की और शब्दावलियों की संधि अकबर के काल में उत्तर और दक्षिण में दरार के रूप में पड़ी थी जिससे पाश्चात्यों की मनोवृत्ति और उनके मनोविकार की एक धारा ने प्रवाह का रूप पकड़ कर अनिश्चित समय के लिए लोकानुरंजन के रूप में संगीत के दो किनारे समाज को प्रदान कर दिये।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तीसरा प्रकरण

ध्रुवपद-गायकी के सिद्धान्त

ध्रुवपद-गायकी के सिद्धांतों को यदि विहंगम दृष्टि से देखें तो यह स्पष्ट हो जाता है कि ध्रुवपद-गायन लोक-रिझावन की दृष्टि से सदा अपने विचारों को संकुचित और भिन्न रखता है। कलापक्ष से भी यदि ध्रुवपद-गायकी के सिद्धान्तों पर विचार किया जाय तो भी लोक-समीक्षा से इसका अंतर रहता आया है। अब देखना यह है कि वास्तव में ध्रुवपद-गायकी का मूल सिद्धान्त क्या है ?

सर्वमत से यह तो निर्विवाद सिद्ध है कि गान का मूल तथ्य आत्मवंचना के लिए न होकर आत्म-विवेचना और आत्म-साक्षात्कार के लिए सदा से निहित रहा है—चाहे वह वैदिक युग में ऋचाओं का गान रहा हो, अथवा यज्ञ-प्रधान युग में छन्दों द्वारा देवाह्वान के लिए गाया गया हो, अथवा प्रवंध के युग में देव-स्तुति के रूप में गाया गया हो। सच बात तो यह है कि आत्म-विवेचना से सान्निध्य प्राप्त करने को ही गायन का वास्तविक सिद्धान्त सत्यकला के स्वरूप को विद्वानों की दृष्टि में प्रमाणित कर पाने में समर्थ हो सका है।

इस प्रकार प्रारम्भिक गान का जो मूल सिद्धान्त था, वही ऋक्-साम गान में, छन्द-गान, प्रबंध-गान को शृंखलाबद्ध रूप में धारण करके ध्रुवपद-गान के रूप में प्रस्फुटित हुआ है।

विशेषताएं

उपर्युक्त गान के वैदिक प्रकारों से एक सिद्धान्त ध्रुवपद-गान ने विशिष्ट रूप से उत्पन्न किया जो अन्य प्राचीन गान-भेदों से पृथक् और गांधर्वी-कला की उत्कृष्टता से भरपूर है। उदाहरण के लिए रागों की भिन्न-भिन्न जातियों में स्वरों का एक स्वतंत्र विस्तार और साधारण प्रकार से उसके कुछ अंशों में ही स्वर-श्रुतियों का स्वरूप करके समाप्त न करते हुए उसके पृथक्-पृथक् अंग-उपांगों में स्वरों की एक प्रौढ़ता और श्रुतियों के सूक्ष्म अंतर में स्वरों के नाद की विस्तृत भूमिका सहित कंठ के अनेक गूढ़तम भेदों के समूह को क्रिया-रूप में प्रकट करके राग-स्वरूपों को प्रत्यक्ष कर देना।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

यह सिद्धान्त ध्रुवपद-गायकी के पहले इस प्रकार की संपूर्णता को प्राप्त नहीं कर सका था, न इस मार्मिक सिद्धान्त को किसी ने इस प्रकार पुष्ट रूप से प्रकट किया था। उपर्युक्त विशेषताएँ स्वर-श्रुतियों के सिद्धान्त रूप में हैं जो ध्रुवपद की अपनी विशिष्टता कही गयी हैं। किन्तु ताल, लय, मात्रा, क्रिया, काल को भी गान-कला में विस्तार रूप से ध्रुवपद के ही सिद्धान्त ने वृहद् किया है। इसे भी ध्रुवपद-गायकी के समान अन्य किसी गायकी ने प्रौढ़ता नहीं प्रदान की।

आइए, अब ध्रुवपद के साहित्यिक सिद्धान्तों, शैलियों के क्रम में वाणी-भेद, उनकी विशेषताएँ एवं लाक्षणिकता का ज्ञान प्राप्त करें।

शैली

सर्वप्रथम यहाँ ध्रुवपद की गान-शैली पर विचार करना आवश्यक प्रतीत होता है। सामान्यतया ध्रुवपद की गान-शैली अन्य प्राचीन शैलियों से सर्वप्रथम साहित्यिक वाणी में अपनी अनेक सूक्ष्म भाषा एवं भावगत भावनाओं की विशेषता लेकर भिन्नता को ग्रहण करने लग गयी। प्राचीन प्रबंधों में जहाँ भाषा-साहित्य की विशिष्ट पंक्तियों को ही स्थान था, उसे ध्रुवपद ने कुछ चुनी हुई पंक्तियों में सम्पूर्ण करके, कला-विधा के स्वर-श्रुति-ताल-लय के विस्तृत निचोड़ों को उतनी ही पंक्तियों में भरकर प्रामाणिक माना। इस वंचित रचना को ध्रुवपद शैली की कोई भी प्रामाणिकता प्रदान करना दोषपूर्ण माना गया और रचनाकार को ध्रुवपद की रचना-शैली से अनभिज्ञ मानना स्वाभाविक रूप से सिद्ध हो गया। ध्रुवपद ने प्रबंधों के समान अपनी भी नवीन शैली वाणी-भेद के रूप में प्रकट की और छन्द-गान के उन्हीं गुणों और विशेषताओं को वाणी की भिन्न-भिन्न चार विशेषताओं में विभक्त कर दिया, जिन्हें पूर्वकालिक छन्द-गान के चार पृथक् गान एवं शब्द-भेद के गुणों से सजाया गया था। उनकी पृथक्-पृथक् लाक्षणिकता भी कही गयी। ध्रुवपद-गायकी का सिद्धान्त पृथक् स्वर-श्रुति-गनकादि भेदयुक्त आलापचारी करके, पश्चात् गाकर समाप्त कर देना स्वर्गीय गान्धर्वी-कला का श्रेष्ठ रूप माना गया। ध्रुवपद-गान ने छंद-गान से पृथक् उसी के विशिष्ट साहित्यपूर्ण अंग को उसके सिद्धान्तों का निचोड़ सूक्ष्म एवं मार्मिक स्वर-शब्दों के रूप में भिन्न-भिन्न शैली में प्रसारित किया और वे विधा के मर्मभेदों से पूर्ण वाणी के रूप में प्रकट हुए। उन्हीं वाणियों के गान की विशेषता को ध्रुवपद-गान की श्रेष्ठ लाक्षणिकता प्राप्त हुई जिनमें प्रथम श्रेणी के ध्रुवपद की गान्धर्वी-कला का सर्वस्व निचोड़ सूक्ष्म में ही भर दिया गया था।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

आधुनिक ध्रुवपद-गायन के ढंग

'आधुनिक' से तात्पर्य वर्तमान काल का ही है। वर्तमान काल में जो भी ध्रुवपद-गायन के ढंग सुनने में आ रहे हैं, वे वास्तव में आधुनिक ही हैं। 'ढंग' का अर्थ है, एक प्रकार; कोई भी एक प्रकार जो अपने समय में गान-प्रथा में सबके मुख से सुनने में आवे वही 'ढंग' कहा जाता है। लेकिन जिस गायकी की नाम-संज्ञा एक हो और उसे किसी एक रीति या ढंग से सभी गायक न गाकर पृथक्-पृथक् अपनी मनमानी चलावें, गावें, तो वह कोई ढंग नहीं कहा जा सकता। तब यह कहना स्वाभाविक होता है कि लोगों ने इस गायकी का ढंग बेढंगा कर दिया, अथवा बेढंगे ढंग से गा रहे हैं। यह बात उसका ज्ञाता ही जान सकता है। अतः यहाँ संगीत-गान के केवल श्रोताओं का कोई सिद्धान्त उपयोगी सिद्ध नहीं हो सकता। कारण,'भिन्न रुचिहि लोकः'। इसके अतिरिक्त श्रोतृ-समाज केवल सुनकर ही किसी शैली के आंतरिक भेदों का ज्ञाता कभी नहीं हो सकता, तब उसके सिद्धान्तों की बात को मानना प्रामाणिकता की अवहेलना करना ही है।

आधुनिक ध्रुवपद-गान के ढंग पर कुछ विचार करने से पहले प्राचीन ध्रुवपद-गायन के ढंग का स्पष्टीकरण करना आवश्यक है। प्राचीन ध्रुवपद-गायन का ढंग पुराने सुशिक्षित योग्य परम्परागत ध्रुवपद-गायकों के सिद्धान्त को लेते हुए अथवा उनके प्रामाणिक वाक्यों को दोहराते हुए यह लिखना सर्वमत से आवश्यक है कि ध्रुवपद-गान करने वाले सदा किसी भी एक राग-रागिनी का सांगोपांग आलाप करके उसी राग में एक-दो या पाँच-दस ध्रुवपद गाकर अपना गायन समाप्त कर देते थे। यहाँ यह समझाने या लिखने की विशेष आवश्यकता नहीं है कि क्या ध्रुवपद की भिन्न-भिन्न चारों बानियों के गायकों का एक ही सिद्धान्त था? हाँ, उन पृथक्-पृथक् बानियों के ध्रुवपद-गायक अपना आलाप भी उसी गायन-प्रणाली के अनुसार आरंभ करते थे, वैसी ही रीति से विस्तार करके आलाप समाप्त करने के साथ उसी राग में एक-दो या दस-पाँच ध्रुवपद गाकर अपना गायन समाप्त करते थे, तब यहाँ प्रश्न उठता है कि पृथक्-पृथक् बानियों के गायन की विशेषता ही फिर क्या होती थी? बात ठीक है।

उदाहरण के लिए शुद्ध वाणी का गायक, जिसे 'गौरहारी' कहते हैं, अपना आलाप सदा दीर्घश्वास-पूर्ण, विशेषकर स्वर-श्रुतियों के संयोग से, उनके स्थान-प्रयोगों को विशिष्ट अंगों से सजाकर प्रस्तुत करते थे। वे रागों या भिन्न-भिन्न प्रकृति की रागनियों के स्वभाव के अनुसार कम या अधिक स्वरों के स्थान नियुक्त करते थे। स्वरों के ठहरावों के नियमानुकूल, मंद्रतार-मध्य स्थान भाव को देख उस अमुक राग-रागिनी को आरम्भ करते, विस्तार करते और सुचारु रूप से समाप्त करते थे। आचार्यों ने उसी राग के भावानुकूल ध्रुवपदों को भी स्वर-शब्द निबद्ध किया था,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जिसे गाकर गायक अपना गान समाप्त कर देते थे। इसी प्रकार 'खण्डहार बानी' वाले अपने आलाप में प्रारम्भ से ही विशेष गंभीर स्वरों के गुप्त-प्रकट की क्रिया आरंभ करते थे और उसी प्रकार उस राग व रागिनी का पूर्ण रूप स्वर-श्रुतियों के संयोग-वियोग के द्वारा बाहुल्य एवं विस्तृत स्वरूप दर्शाकर उसी बानी के ध्रुवपद को गाकर अपना गान समाप्त करते थे। ध्रुवपद गीत के गान आरम्भ होने के पश्चात् कोई भी खंडित क्रिया गीत में नहीं की जाती थी, जैसा कि हम आधुनिक ध्रुवपद-गायकों को देखते हैं।

एक बात यहाँ पर विशेष रूप से उल्लेखनीय है कि ध्रुवपद गीत को प्रार्थना अथवा उस राग की स्तुति के रूप में ही गाने की धारणा प्राचीन ध्रुवपदज्ञों में थी। आलाप को वे राग-स्वरूप की स्थापना-आह्वान मानते थे और ध्रुवपदों को स्तुति-मंत्र के समान उसके प्रत्येक स्वर, शब्द, छन्द, मात्रा, लय, क्रिया, काल, उच्चारण और सम्पूर्ण कर देने में संलग्न रहते थे। इस क्रिया को पूर्ण करने वाले को ही 'क्रियापर' माना जाता था—जैसे मंत्र को उच्चारण-काल में उस मंत्र के देवता, ऋषि, छंद, विनियोग, संकल्प के साथ जिस प्रकार धारण किया जाता था, ठीक उसी प्रकार आलाप के साथ रागाह्वान के समाप्त होते ही ध्रुवपद-गान आरम्भ हो जाना आवश्यक नियम है। किन्तु वर्तमान समय में किसी गायक को ऐसा करते देखा नहीं जाता बल्कि इसके स्थान पर ध्रुवपद-गायकी के नाम पर गायक एक कौतूहल और वीभत्स रूप प्रस्तुत करता हुआ पाया जाता है। अतः गायन का लक्ष्य ही कृत्रिमता पर आधारित हो गया है। उसकी जो भी क्रियाएं ऊपर बताई गई हैं, वे तो प्राचीनता की चरम सीमा का लक्ष्य थीं।

ध्रुवपद-गायन का उद्देश्य

प्रस्तुत प्रसंग में ध्रुवपद-गायन की क्रिया की समीक्षा करना आवश्यक हो जाता है। सबसे पहली बात, उद्देश्य की समीक्षा लीजिए।

वर्तमान के सभी प्रकार के गीत-गायकों का मत है कि लोकानुरंजन संगीत के समस्त अंग का वास्तविक उद्देश्य है, अथवा होना चाहिए—तब तो लोकानुरंजन को लक्ष्य करके कोई भी विधा तत्व के रूप में कायम नहीं रह सकती। अपने मार्ग पर अटल रहकर ही कोई विधा-तत्व लोगों में विशिष्ट अभिरुचि पैदाकर उन्हें उस तत्त्व का वास्तविक रसास्वादन करा सकता है और तभी वह विधा कल्याणमयी बनी रह सकती है। इसी सिद्धान्त को आधार मानकर विधा द्वारा लोकानुरंजन को दृष्टि में रखते हुए विद्वानों को आगे बढ़ना चाहिए। अतः हमें यह स्वीकार करना होगा कि ध्रुवपद-गायन में भी इसी सिद्धान्त का

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अनिवार्यतः पालन कर्त्तव्य-रूप में अपेक्षित है।

आधुनिक ध्रुवपद-गायन के दोष

ऐसी दशा में हमें यह देखना चाहिए कि आधुनिक ध्रुवपद-गायन में कहाँ-कहाँ पर किस प्रकार की त्रुटियाँ हो रही हैं। सर्वप्रथम तो ध्रुवपद से पहले जो आलाप किया जा रहा है, वही अनियमित है। किस प्रकार, यह देखिए!

ध्रुवपद-गायन-प्रणाली में राग का विस्तार यानी आलाप कतिपय नाम-भेदों के नियमानुसार ही करने को ध्रुवपद, अंग का आलाप कह सकते हैं। आलाप, आलप्ति, रूपकालप्ति, स्वस्थानालप्ति, रागालप्ति इत्यादि कुछ विशिष्ट नियम छंद-प्रवंध गायकों ने लिखे हैं, उन्हीं के अनुसार आलाप करना ध्रुवपदज्ञों के लिए आवश्यक है; क्योंकि ध्रुवपदों में जिन धातुओं का प्रयोग किया गया है वे सब नियम प्रबंध-गान के ही हैं। बहुत-सी उत्तम रचनाओं में तो ऋचागान तक के कुछ नियम-भेदों के यदाकदा सूक्ष्म रूप से दर्शन होते हैं। अस्तु।

प्रसंग है ध्रुवपद का! तो ध्रुवपद का गायन आलाप को लेकर आरंभ होता है, किन्तु आधुनिक गायक आलाप का ही व्यतिक्रम करते हुए पाये जाते हैं। अंतः में प्रवेश करने पर ऐसे भी नियमों का प्रयोग वाँछनीय है कि अमुक राग या रागिनी का प्रथम आलाप अमुक स्वर से उठाते हुए, अमुक स्वर तक जाकर अमुक स्वर पर ही समाप्त कर दिया जाए। इसलिए इस नियम का पालन करने के सम्वन्ध में प्राचीन गायक विद्वानों ने शास्त्रों में ऐसे नामकरण भी दिये हैं, जैसे ग्रह, अंश, न्यास, अपन्यास, संन्यास, विन्यास।

अब आइए, राग-रागिनी के अपने स्वतंत्र स्वरूपों पर विचार करें। इसे ध्यान में रखते हुए विद्वानों ने ग्रह-मन्द, ग्रह-मध्य, ग्रह-तार, ग्रह-अंश, ग्रह-न्यास, ग्रह-अपन्यास, ग्रह-संन्यास जैसे भी स्वरोच्चार-विस्तार समाप्त के भी नियम बनाये हैं। यह सामान्य नियम-भेद है। आगे उच्चारण के अट्ठारह भेद मिलते हैं। किस ग्रह-स्वर को किस स्वर के साथ प्रयोग देना, किस स्वर का पुनः प्रयोग करना भी इसमें है। पुनरुच्चारण, वियोगी भाव, व्यभिचारी भाव, लुप्त भाव, दीप्त, उद्दीप्त आदि—इस प्रकार आलाप में स्वरोच्चार के नियम ध्रुवपद-गायन के आलाप में प्रधान रूप से बताये गये हैं, जो आधुनिक ध्रुवपद-गायकों को प्रयोग करते पाना दुर्लभ और अशक्य ही है। इस समीक्षा में गमकों के अट्ठारह भेदों का भी प्रयोग बहुत मूल्यवान् है, अन्यथा गायन प्राणहीन माना जाता है—यह ध्रुवपद की गायन-प्रणाली का अडिग सिद्धान्त है। यह सारी तुलनात्मक समीक्षा प्राचीन और मध्ययुगीन को लेकर दर्शायी गयी है, वह भी मात्र आलाप-भेद में।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रस्तुत सन्दर्भ में गीत के निहित सिद्धान्तों पर प्राचीन और आधुनिक दृष्टि को लेकर तुलनात्मक समीक्षा करना आवश्यक-सा हो जाता है। 'ऋक् ध्रूढः साम गीयते'—इस पंक्ति को हमें कभी भुलाना नहीं चाहिए। पुनः संहिता-शाखा, छांदग्योपनिषद्, गान्धर्वोपनिषद्, इस प्रकार बाद का वेद अर्थात् ज्ञान का गायन के रूप में विस्तार-व्यवहार होता हुआ ऋभुओं के गायन से एक प्रणव, सहस्त्र सूत्रजाल शाखोपशाखा गान्धर्व वेद की वृहद् विधा प्रौढ़रूपेण समाप्त हुई; और कला-विधा के विशिष्ट गुणों के विस्तार के सार शब्द-स्वरों को साथ लेकर जिस गान का निर्माण हुआ उसी को ध्रुवपद नाम से अभिहित किया गया। इसी कारण ध्रुवपद का गायन स्वर-श्रुतियों की विस्तृत कला के द्वारा समझा जाता है। राग वा रागिनी का आह्वान करने के पश्चात् ध्रुवपद-गान के द्वारा स्तुति या मंत्रोच्चार करके गान समाप्त कर देना विद्वानों का सिद्धान्त रहा है। किन्तु समय सदा एक समान नहीं रहा करता। ऊपर मैंने जिस ध्रुवपद-गायन-प्रणाली का इतिवृत्त अब तक पाठकों के सम्मुख रखा है उसे आर्य-सभ्यता की उत्कृष्ट कला का निखरा हुआ रूप कहा जा सकता है।

विदेशी आक्रमणकारियों के समय परिस्थितियों में परिवर्तन होने पर और देश में मुस्लिम शासन की नींव जम जाने के बाद कई हिन्दू संगीतज्ञ इस्लाम धर्म में जा मिले तथा राज्याश्रय में दरबारी गायक का नाम प्राप्त कर वे गायन-विधा के पदाधिकारी के रूप में प्रतिष्ठित हुए। यह ध्रुवपदों के शब्दों में परिवर्तन का काल था। कुछ पीढ़ी बाद इनमें हिन्दी-संस्कृत शब्दों के स्थान पर क्रमशः उर्दू, फारसी-अरबी शब्द शामिल हो गये। देवी-देवताओं, ईश्वर और उसके अवतारों की गाथा, जो गीत का ध्येय थी, के स्थान पर नवाबों बादशाहों, पीर-फकीरों, पैगम्बरों और नबियों का यशोगान गीत में वर्णित होने लगा। वैसे देखा जाय तो इसका भी महत्व अवश्य है; क्योंकि गीता में श्रीकृष्ण ने स्पष्ट कहा है कि "मनुष्यों में मैं नृप हूं।" अस्तु, परिवर्तित धर्मग्राही, हमारा ही वही सांगीतिक समाज उस काल में अपने व्यवहार की शिक्षा में आये हुए शब्दों में गीत-रचना कर उसे ध्रुवपद कहकर गाता रहा; क्योंकि वे लोग थे तो वास्तव में ध्रुवपदिये ही; वस्तुतः खानदानी ध्रुवपदिये !

इस प्रकार उत्कृष्ट कला के निखार का रूप और मानव समाज पर बदलने वाली परिस्थितियों के बाद के परिवर्तित रूप में कई प्रकार का अन्तर तो हो ही गया; क्योंकि विचार बदल गये, भाषा और धारणा बदल गयी। भाव भी तो बदलने थे ही, अतः भारतीय संगीत-शास्त्रों का पठन-पाठन धीरे-धीरे समाप्त-प्राय हो गया। अब शेष रह गयी थी केवल स्वर और रागों की ध्वनियों की पकड़, जिसे आधार बनाकर आज भी भारतीय संगीत किसी अंश में जी रहा है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

संगीत कला की विधा ध्वनि-प्रधान है। ध्वनियों के स्थानों को श्रवण द्वारा ही मस्तिष्क में पहचान, परख कर कण्ठ से अभ्यास करके उसे उसी रूप में याद किया जाता है। यही आधार सुशिक्षितों और अशिक्षितों का संगीत के प्रत्येक अंग को लेकर सदा से रहा है और रहेगा। अब यहां इतना भेद अवश्य हो जाता है कि मन की कल्पना, अन्दाज और शास्त्रों के वाक्य-प्रमाणों को, भूल होने पर शंकाओं को देख-सुधार कर, उसी प्रमाण में अपनी कल्पनाओं के स्वर, शब्द, राग, तालों को गति देकर, अभ्यास करके, पुरातन रीति को सुरक्षित रखना। कई बार प्राचीन गायकों ने इसे सुरक्षित रखने का यथाशक्ति प्रयत्न भी किया। शास्त्रीयता के कठोर अनुशासन से छूट दिलाकर कुछ गायकों ने इसमें और किस्मों के अलंकार रोचकता, जनरंजकता का मिश्रण किया। हिन्दी, ब्रजभाषा, डिंगल-पिंगल के काव्यानुशासन का पठन-पाठन छूट गया और इसके परिणामस्वरूप उर्दू-फारसी के शब्दों का बहुल प्रयोग ध्रुवपदों में होने लगा। देवी-देवताओं, सूर्य, चंद्र, इन्द्र, गणेश, शिव, शिव के गण या योगिनियों की जगह अन्य प्रकार के शब्द ध्रुवपदों में प्रतिष्ठापित हुए। अतः कला के क्षेत्र में कई प्रकार का परिवर्तन होने से ध्रुवपद के वाणी-भेद-अनुशासन का नियम ही मिट गया। साथ ही, संगीत के स्वर, राग, ताल का भी शास्त्रीय नियम न रह गया। कई बार मन्द्र का राग मध्य और तार में गायकों ने अपनी रचना-विशेष में जानकर या अनजान में या कला-कारिता के अपने प्रभुत्व की चमत्कारी शक्ति से गाया, जिसका कोई आधार-प्रमाण नहीं रह गया। इस तरह की उलट-फेर राग-स्वर के प्रमाणों में देखने, सुनने, सीखने में आती रही है।

उपर्युक्त प्रकारों के ध्रुवपद कई स्थानों में, कई घरानों में एक से दस तक देखने-सुनने-सीखने को मिले। फिर भी उस्ताद जियाउद्दीन खाँ से कई चीजों का शुद्ध और सुन्दर रूप मुझे मिला है। उस्ताद जियाद्दीन खाँ, उस्ताद जाकिरुद्दीन खाँ के बेटे थे। इन्हें गाने के अतिरिक्त सितार, तबले और नाचने का भी शौक था। इन्होंने कई शिष्य-शिष्याओं को सिखाया भी था, जिनकी कला तालीम के समय जाकर मैंने देखी-सुनी है। उस्ताद बड़े ही मिलनसार, गंभीर, हंसमुख, चुटकुलों की झड़ी लगाने वाले व्यक्ति थे और उर्दू साहित्य के अच्छे ज्ञाता थे। उन्हीं का बताया हुआ एक ध्रुवपद यहाँ प्रस्तुत है—

ध्रुवपद—देव साख

स्थायी : नवरोज बहेलुआ शुभ घड़ी शुभ घड़ी शुभदिन बैठे तख्त
मुबारक हजरत अली।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अन्तरा : अली बली शाह दीन पनाह भैलों जगत में सब ओर आनंद ।
सञ्चारी : बैठें साहब सिरताज दीन दुनी के भी जगत सों धाये आये पाये
पनाह ।
आभोग : नर-नारी मिल गाओ बजाओ रिझाओ थप्पा थप्पा तन उदीना
तोम तना नादिरना बाजो रे मधुरला बाज ।

ध्रुवपद—राग : कान्हरा-चौताल

स्थायी : शाह अकब्बर दूलह घोष कुतुब दूलह दुलहिन चिरंजी रहो
जौ लौं गंग-जमुन ध्रुवतारो ।
अन्तरा : पुनि अनेक लगन चितवत सीस फूल सेहरा विचित्र,
मालन गूँद-गूँद लाई ऐसो बेल चमेली के हारो ।

यह ध्रुवपद 'छत्रीपति राम तुम महान् ज्ञानवान' के कुछ शब्दों को चुरा-झपट कर रचा हुआ प्रतीत होता है । मैंने इसे सोहनीं में भी सुना है । आगे का ध्रुवपद भी अल्लाबन्दा खाँ द्वारा बहुत गाया गया है। इसे वे कभी दरबारी कान्हरा में, कभी टोड़ी में, कभी ललित में और कभी मुलतानी में भी गाते सुने गये हैं । एक ही गीत वा ध्रुवपद को कई रागों में गाना कहाँ तक उचित है, इस पर पाठक स्वयं विचार करें ।

ध्रुवपद-गायकी के पुराने घरानों में, जो 1857 ई० के पूर्व के हैं, उनमें कालपी घराना, तालमण्डी घराना और विष्णुपुर घराना ही प्रसिद्ध हैं । ये ही वे घराने हैं जिनमें कि दिल्ली के शहंशाहों के दरबारी तानसेन के पुत्र और दौहित्र-वंशजों तथा कुछ अन्य लोगों का ध्रुवपदीय कुटुम्ब निवास करता था ।

भारतीय पुरातन संगीत की कलाकृतियों को जिसने जिस राग, स्वर, ताल में जिस अक्षर को जहाँ रखा है, उसे उसी रूप में रखकर सीखना, साधना करना और बिना नुक्ताचीनी के ज्यों-का-त्यों, वैसे का वैसा ही सभा में सुनाये जाने की प्रथा को उन्होंने कायम रखा । यह परम्परा कालपी घराने में, खजूर गाँव वालों के पूर्वजों ने कायम की थी कि इसमें जो भी छोटे-बड़े गायक होना चाहें उन्हें पाँच सौ से दो हजार वर्ष तक की पुरानी कृतियों को ज्यों-का त्यों सीखना और वैसे का वैसा ही सभा में बिना किसी फेर-बदल से गाना होगा । यह इस घराने की निजी विशेषता रही है । यहाँ तक कि अक्षरों के श्वाँस लेने-छोड़ने तक की विशेषता में भी ये लोग प्रख्यात थे । ये लोग रीति-नियमबद्धता में कठोर अनुशासित रहने का गौरव पालते-मानते आये हैं ।

इस कालपी घराने से सम्बन्धित नेपाल के ताज खाँ, मुजफ्फरपुर के काले खाँ, नज्जू खाँ, चांदापुर व रियासत दियरा के उस्ताद अब्दुलगनी खाँ, मुरव्वत खाँ

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

आदि ने समाज के गुणियों के मध्य बड़ी प्रसिद्धि और मान्यता प्राप्त की थी। अब्दुल गनी खाँ साहब की ख्याति यद्यपि प्रायः वीणा, सुर-बहार के कुशल वादक के रूप में थी तथापि वे घरानेदार ध्रुवपदियों के उन्हीं साहब खाँ के प्रपौत्र थे जिन्हें कालपी-खजूर गांव वालों ने खलीफा का पद दिया था। उस्ताद काले खाँ मुजफ्फरपुरवाले तथा उस्ताद अब्दुल गनी साहब दियरा चांदापुरवाले से हमें तालीम में सुनने-समझने को एक-एक राग में ग्यारह-ग्यारह ध्रुवपद-धमार मिले और इन्हीं लोगों से मैंने प्राचीन गीतों का एक संग्रह करने की भी प्रेरणा प्राप्त की।

मुसलमान होने के बाद भी हिन्दू संगीतज्ञ अपनी इसी भावना को गीतों में भरते रहे—'भक्ति-भक्त, भगवन्त, गुरु चतुर नाम, वपु एक, तिनके पद वंदन किये नाशत विघ्न अनेक'। ऐसे शब्द हम हवेली-सम्प्रदाय की रचनाओं में पाते हैं। फिर भी कई बार गायक-वादकों में ऐसी चर्चा उठ खड़ी होती है; जैसे—"अजी, उनकी कोई अच्छी याददाश्त नहीं है; देखो न, उन्हीं चीजों को कभी किसी राग में और कभी किसी राग में गाते मैंने सुना है। यह क्या ? जिनकी चीजें अच्छे दर्जे को प्राप्त नहीं हुईं, वे ही लोग उन चीजों को हर जगह बार-बार दुहराते हैं। यदि तालीम में वे आयी हैं तो फिर गाते क्यों नहीं ? इन्हीं चीजों को क्यों घोटते हैं ?"

जैसे समकाल की विशेषता में निकासतीयों को सुलभ कर लेने में, पखावजी से ताल-लय का चौसर खेलने के लिए एक ध्रुवपद-गायक 'बेनी निरखत भुजंग' चौताल में तथा 'मौज दरिया' शूल ताल में कई बार कई जगह सदैव गाते सुने गये हैं। ऐसे ही स्वर-वाद्य-वादक भी कुछ ही संकुचित राग-ज्ञान बार-बार सभा में प्रस्तुत कर प्रमाण देते हैं। इसे सांगीतिक आपस में अपनी भाषा में 'राग का जिगर घोंटना' भी कहते हैं। ऐसी कला के प्रति समाज में नीरसता उत्पन्न हो जाती है।

यह बात यद्यपि किसी प्रकार साधना के क्षेत्र में सफल हुई है, तथापि पुरानी कृतियों को सीखने, संग्रह करने वाले जिज्ञासुओं के हृदय में यह उदासीनता अरुचि उत्पन्न करती है। भारतीय संगीत में ध्रुवपदज्ञों में घरानाबाजी पहले नहीं थी, केवल बानी-भेद था। पिता के बाद पुत्र चाहे तो किसी दूसरी बानी के विशिष्ट साधक का शिष्य बनकर, सीखकर पिता की गायन-प्रणाली से पृथक् दूसरी प्रणाली की बानी का गायक-विशेष बन सकता था। किन्तु सोलहवीं शताब्दी से तानसेन और तानसेन-दौहित्र वंश के समान ही इन्हीं के वंशज लोगों ने अन्यत्र जा बसने पर उस ग्राम के साथ नाम जोड़कर तथा अमुक प्रकार को ही अपने पुत्र-पौत्र, वंशजों या शिष्य को गाने की शिक्षा में ही साधना करा, अपनी विशेषताओं के साथ उसी अनुशासन से गाने की रीति में रहने का प्रतिबन्ध लगाकर घरानों का निर्माण कर डाला।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

यूं तो, सभी घरानों की कुछ-न-कुछ अपनी विशेषताएँ अवश्य हैं। कालपी घराने के ध्रुवपदीय स्वर्गीय करामत खाँ से इसी प्रकार एक राग में अनेक ध्रुवपद मुझे सुनने-सीखने को मिले। प्रसिद्ध अल्लावन्दा खाँ ने भी इनका विशिष्ट राग-प्रस्तार बहुत कुछ सुनकर सीखा था। जिज्ञासु को चाहिए कि सांस्कृतिक रागों की स्वर-रचना जानने के लिए प्राचीन गीतों का संग्रह करे। इससे दो प्रकार के लाभ हैं: एक ही राग में अनेक ढंग से चीजों की गढ़न हमें प्राप्त होती है जिसके आधार पर रागों के स्वरूप और भिन्न-भिन्न चलन को हम आलापचारी में सप्रमाण उपस्थित कर सकते हैं; साथ ही गीत-विषयक् भाषा की व्यवस्था, स्वरों की रचना, शब्दों के संकलन, अलङ्कार, शब्द-विन्यास इत्यादि बातों से युक्त साहित्यिक रचनाएं भी हमें ध्रुवपद रचना-शैली की मिलती हैं। तालों के भी विभिन्न प्रयोग अनेक ध्रुवपदों में प्राप्त होते हैं। यह सभी बातें विद्या-दृष्टि से किसी भी जिज्ञासु को होनी आवश्यक हैं। एक राग के किसी ध्रुवपद में उसके रचयिता ने जो भी ग्रह-न्यास रखे हैं या रखे होंगे, वे उसी प्रकार दूसरे राग में ठीक शास्त्राधार से निश्चित रहेंगे।

तात्पर्य यह है कि किसी भी एक राग में गीतकार उस राग के अनुकूल भाव और शब्दों की रचना करता है। रागों के स्वर और भाव एक-समान नहीं होते। ललित का ध्रुवपद ललित राग के ग्रह-अंश-न्यास, राग-प्रकृति और समय के अनुकूल होना आवश्यक है। वर्षा ऋतु के राग वर्षा ऋतु की प्रकृति, भाव के अनुकूल बने होंगे। तब इन दोनों रागों की चीजें किसी अन्य ऋतु-परिवर्तन अथवा समय-काल के अनुकूल कैसे हो सकती हैं? यही मेरा अभिप्राय है।

अतः यह आक्षेप स्वाभाविक है कि एक प्रसिद्ध गायक द्वारा एक ही गीत कई रागों में कई बार सुना गया है। ध्रुवपद जैसी सुदृढ़ शास्त्रयुक्त प्राचीन राग-गायन की प्रखर गीत-परम्परा पर यह एक प्रकार का लांछन है। कोई भी विद्या किसी एक व्यक्ति की नहीं होती। अतः व्यक्तिगत स्वभाव और शिक्षा की अपूर्णता का दोष व्यक्तिगत अशास्त्रीय प्रयोग करने वालों पर है, जिसका उपयुक्त मार्ग-दर्शन आवश्यक है ताकि हमारी सांस्कृतिक कला दूषित न होने पाये। उदाहरणार्थ यह ध्रुवपद देखिए—

ध्रुवपद

स्थायी : हसन हुसेन को रख ध्यान दोहु नयन में।।
अंतरा : हरदय रसना रटना आविद वाकर जाफर जकी नकी में।।
संचारी-आभोग : मूसा वर्जा तकनीक गोज रख में हदि के चरण पर सिर को।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हवेली सम्प्रदाय में गुरु की महत्ता

हवेली सम्प्रदाय और ध्रुवपद गायकी-प्रकार में 'गुरु गरीयान महती महीयान्' के अनुसार गुरु की महिमा का भारी महत्व है। भारतीय सम्प्रदायवाद में गुरु का स्थान भगवान् के समान ही पूर्व काल से प्रतिष्ठित होता आ रहा है। गोस्वामी तुलसीदास जी ने भी गुरु की अप्रतिम महिमा गायी है—

वंदौ गुरुपद कंज, कृपासिंधु नररूप हरि।
महामोह तम पुंज, जासु बचन रविकर निकर॥

और,

गुरु पद रज मृदु मंजुल अंजन; इत्यादि।

यहाँ पर 'नररूप हरि' वाक्य प्रमाण है कि गुरु 'नर' अर्थात् आदमी के रूप में 'हरि' अर्थात् भगवान् है। भगवान् के अनेक रूप और अवतार तो प्रमाणित हैं ही, अतः गुरु भी ईश्वर, विष्णु, नारायण, राम, कृष्ण का ही रूप है। इसमें यदि लोक-गाथाओं को भी सम्मिलित कर लें, तो वल्लभाचार्य 'महाप्रभु' कहकर पूजे जाते हैं, जबकि कृष्ण केवल 'प्रभु' मात्र ही हैं।

विचारपूर्वक सोचने पर यह बात ठीक भी प्रतीत होती है कि हम जिस वीणा को सरस्वती मान कर पूजते हैं, भले ही वह कृत्रिम काष्ठ, तुम्बादि, तारों के ही उप-आवरणों से किसी कारीगर द्वारा निर्मित हुई है, तथापि उसे ही सरस्वती पद प्रदान किया जाता है। वेद, शास्त्र और सद्ग्रन्थों में वर्णित नाद की सर्वोच्च सूक्ष्मातीत ब्रह्मविद्या की प्राप्ति भी हमें उसी से प्राप्त होती है, न कि भिन्न आकृति में सरस्वती स्वयं बज सकने के लिए प्रस्तुत हो सकती है। ठीक इसी प्रकार यहाँ श्रीमद्वल्लभाचार्य जी को महाप्रभु कहना उचित है, क्योंकि कृष्ण की प्रतीति हमें उन्हीं के माध्यम से होती है। इसी को लेकर इस सम्प्रदाय के शिष्यों में जो गायक वर्ग हो गये हैं, उन्होंने इन गुरुओं के ईश्वरत्व की पुष्टि करते हुए पुष्टि-मार्ग में कीर्तन गाये, जिन्हें ध्रुवपद के विभिन्न भेदों में रखकर हवेली सम्प्रदाय की ध्रुवपद-धमार की गायन-शैली कहकर प्रचारित किया गया है।

प्रायः सभी लोग जानते हैं कि हवेली सम्प्रदाय में आठ बहुत ही अच्छे काव्यकार गायक हो गये हैं जिन्हें विगत कई सदियों से अष्टछाप के नाम से लोक-प्रसिद्धि प्राप्त है। अतः हवेली सम्प्रदाय की ध्रुवपद-गायकी और प्रकार के निम्न पदों में गुरु-महिमा का वर्णन प्रस्तुत है—

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ध्रुवपद : भैरव—चौताल

स्थायी :

श्री वल्लभजू की शरण आये कलियुग के जेते जीव उधरे सो मैं कहाँ लौं गिनाऊँ।

अन्तरा :

जे कबहुँक नाम लेत तिनहुँक अभय देत मांगत रघुनाथ दास निकट रहे न पाऊँ ।।

इसमें गुरु का सान्निध्य ध्येय है जिससे निकटता रख संसार से तरने की भावना है। शरणागति में तीन विभक्तियाँ रखी गयी हैं—सान्निध्य, सामीप्य और सालोक्य। इसमें प्रथम श्रेणी सान्निध्य की है। इसी राग की दूसरी रचना गुरु के विषय में देखिये—

स्थायी :

श्री वल्लभ कुल के भान, सकल कला गुण निधान ।।

अन्तरा :

श्री गोकुल के नाथ गुसाईं कलि में कलपतरु ।।

आभोग :

इतनी मांगत हौं राखिए शरण मोहि तीज्यों पन आयो अब कहत गिरधर ।।

इस पद में 'श्री गोकुल के नाथ गुसाईं' प्रयोग किया गया है। तभी से वल्लभीय आचार्यों को 'गोकुलिया गोसाईं' जैसे शब्दों में जनसाधारण में पुकारा जाने लगा। अब तक यह प्रथा चली आ रही है। श्री वल्लभाचार्य के दो पुत्र थे। इनमें विट्ठलनाथ को शाही दरबार से 'गोस्वामी' की उपाधि दी गयी थी। इस किंवदन्ती को आधार मानकर इतिहास भी लिखा गया है। इसके पूर्व अन्य कृष्ण-सम्प्रदायियों में इन्हें 'व्रजवासी आचरज जू' कहा जाता था, जो व्रज संस्कृति से संबंधित ऐतिहासिक पुस्तकों में मिलता है। मेरा विषय यहां पर मात्र ध्रुवपद प्रकारों से संबंधित है अतः उसे ही बताना अभीष्ट है। प्रसंगवश यहाँ कुछ अन्य बातों का जिक्र, जो रचना से संबंधित थीं, कर दिया गया है। वैसे इस विषय पर बहुत से शोध-ग्रंथ उपलब्ध हैं जिनका खूब प्रचार हुआ है अतः उनका पिष्टपेषण समीचीन नहीं है। फिर भी यह कहना अपेक्षित है कि 'गोस्वामी' पद किसी विशेष बोध की सूचना का परिचायक है।

हवेली सम्प्रदाय में संगीत कला की दृष्टि से ध्रुवपद-धमार की गायक मंडली द्वारा एक पृथक् सुगम ध्रुवपद-धमार की गायन-शैली का निर्माण किया गया, जिसमें भगवत्-यश और कीर्तन की प्रधानता है। इसके साथ ही लय-तालों व स्वरावर्तों में भी मोड़ दिया गया है। सहजता को अपनाकर कला की बहुत-सी कठोरता के अनुशासन से इस शैली को मुक्ति दिलाकर जन-साधरण के लिए भगवत्-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कीर्तन के ध्रुवपद-धमार गायन की इच्छा-पूर्ति की गयी। फलस्वरूप एक ऐसी शैली बनी जिसने सभी संगीत-प्रेमियों के समूह को एक साथ मिलकर गाने का मार्ग प्रशस्त किया।

संगीत-कला की दृष्टि से यह भी एक प्रकार है जो भारतीय धर्मानुसंधान के प्रतिष्ठित स्थानों पर प्रतिष्ठित रूप में कई सदियों से प्रचलित है। अतः इसका एक रूप तो प्रतिष्ठा-प्राप्त ध्रुवपद-धमार की गायन-शैली ही है। एक प्रकार से और विचार करें कि आज यद्यपि सारे सांगीतिक समाज से ध्रुवपद-धमार का गायन और उसके साथ का वैदिक वाद्य या पखावज-वादन लुप्त और नष्टप्राय हो चुका है, तो भी वह इस सम्प्रदाय के मंदिरों में किसी भी हालत में श्वास ले रहा है, जी रहा है। इसे ध्रुवपद-धमार का गायन और पखावज का वादन ही कहना पड़ेगा। अन्य कोई नाम न इसका है और न दिया जा सकता है—यद्यपि यह सही है कि वह अपने उस व्यवस्थित स्वरावर्तों के रूप में नहीं रह गया है जिसमें यह कभी मुख्य रचयिता द्वारा निर्धारित किया गया था। फिर भी, हवेली सम्प्रदाय की ध्रुवपद-धमार की गायकी और प्रकार वास्तविक ध्रुवपद-धमार की गायकी ही है।

रही बात आचार्यों की यशोगाथा या गुरु-महिमा-गुणगान की, तो यह सदैव से होता आ रहा है। इस सम्प्रदाय की कृष्ण-भक्ति का तादात्म्य चमत्कारपूर्ण इतिहास से सम्बद्ध हो चुका है और इसमें अनेक गोस्वामीजन कृष्णत्व के स्वरूप, महत्ता, लीलाओं के प्रतिरूप थे; तभी उनकी समता का ऐसा गान किया गया है। हाँ, यह बात अलग है कि रघु महान् के कर्त्तव्य, पराक्रम की अपेक्षा राम में अल्प ही पराक्रम थे, फिर भी वे भगवान् रामचन्द्र कहलाये और रघु, रघु ही रहे। वैसे ही गुणों की कमी या विशेषता के होते हुए भी इनमें कृष्णत्व, ईश्वरत्व है। स्मरणीय है, ईश्वर के अथवा भगवान् के कुछ विशिष्ट लक्षण वेदों ने निर्धारित किये हैं।

ध्रुवपद का एक उत्कृष्ट उदाहरण यहाँ प्रस्तुत कर रहा हूँ, देखिए—

ध्रुवपद : मेघराग—चौताल (गौरहार बानी)

स्थायी :

घनघोर छायो मेघ दादुर शोर मयूर गावे ॥

अंतरा :

शृंगार विद्युत किये जग निरख गात अनोखी निरत भावे ॥

संचारी :

दामिनी कामिनी बादर बरण कियो निरख झरोखे पवन लजावे ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

आभोग :

तानसेन पपिहा पियु पियु बोल कहे ऋतु मयंक उर अंक लगाये ।।

अब उन ध्रुवपदों को जो पहले आ चुके हैं, इसकी किसी भी पंक्ति से मिलाकर देखिए तो स्पष्ट हो जायेगा कि रचना की दृष्टि से कौन-सा ध्रुवपद उत्तम है। यहां पर जिज्ञासुओं को सुवोध एवं सरल रीति से ध्रुवपद-साहित्य की स्पष्टता का ज्ञान कराना अपेक्षित है।

जिस प्रकार कवित्त, सवैया, छंद, चौपाई, दोहा, सोरठा, शिखरिणी आदि की शब्द-रचना और उसके वर्णों के चुनाव, गुँथाव की एक श्रेणी साहित्य-शास्त्र में निर्धारित की गयी है; उसी प्रकार छन्द-प्रबन्ध ध्रुवपद-धमार की गायन-प्रणाली के अंतर्गत साहित्य-भाव-भाषा की शृंखला-श्रेणी ध्रुवपदाचार्यों ने निश्चित की है। अतः यह विचारणीय है कि इसके पूर्व ध्रुवपदों की जो चर्चा हुई है, क्या उसमें 'गण' ठीक हैं ? यति भंग है या नहीं है ? साहित्य-शास्त्र ने किसी प्रकार की कविता लिखने या रचना करने के लिए आठ गणों का निर्माण किया है, उन्हीं के आधार पर लघु-गुरु का विचार कर शब्द-रचनाकार को शब्दों की उक्ति करनी पड़ती है। यदि इस नियम का रचना में पालन नहीं किया गया, तो वह गेय नहीं हो सकती है। यह भी जान लेना चाहिए कि पूर्व काल में ध्रुवपद-गान को छंद-प्रवन्धों की श्रेणी में रखा गया है, तो क्या ध्रुवपद में भी छंद हैं ? अथवा, ध्रुवपद-गान की अपनी कुछ छंद-संज्ञाएं हैं ? अवश्य हैं। कुछ तो, ज्यों-का-त्यों प्राचीन छंदगान को स्वीकारा गया है; जैसे, पद-छंद—इसमें प्रायः अधिक ध्रुवपद मिलते हैं। यह सरल है, यथा —'राजत चंद्र ललाट त्रय लोचन त्रिपुरारि'। दरवारी का यह ध्रुवपद सर्वांगीण प्रचार में है। इसी प्रकार तोमर छन्द के ध्रुवपद हैं। सारंग, मृगेन्द्र-मुख, ब्रह्मरूप-छंदों में भी ध्रुवपद पाये जाते हैं। प्राचीन ध्रुवपद-रचनाकारों ने शाब्दिक शृंखला से रचना की है किन्तु शास्त्र से अपरिचित गायक इसका निर्वाह न कर सके।

गायन-प्रणाली

आइये, अब गायन-प्रणाली को लेकर कुछ विचार किया जाय। ध्रुवपद-गायन वेदों के मंत्रोच्चार का अनुकरण करता है। मंत्र-स्तुति को कभी भी बीच में से तोड़कर गाना या बोलना शास्त्र-विरुद्ध है। परन्तु आधुनिक ध्रुवपद-गायक इस नियम का पालन नहीं करता। ध्यान देने की बात है, जो गति, स्वर-ताल की किसी भी ध्रुवपद में बानी-भेद के अनुकूल रची गयी है उसे उसी प्रकार संपूर्ण गाकर समाप्त करना ध्रुवपद-गायकी का नियम है। किन्तु वर्तमान काल में

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

आधुनिक ध्रुवपद-गायक स्वर-ताल की निश्चित गति को किसी भी प्रकार छिन्न-भिन्न कर डालता है, जो अवर्णनीय है। आधुनिक ध्रुवपद-गायन का यह ढंग वास्तव में विचारणीय है।

ध्रुपवद दो शब्दों से बना है—ध्रुव और पद। 'ध्रुव' का अर्थ है, अचल और 'पद' का अर्थ है, शब्द। इसलिए ध्रुवपद में शब्दों का तोड़-मरोड़ करना मना है। प्रत्येक अक्षर पर विहित स्वर-ताल-बन्धान ध्रुवपद शब्द की उस अचल चेतना को लेकर चलता है, जिसके कारण ध्रुवपद-गायन-परम्परा गांधर्वी कला की शिखरारूढ़ धवल ध्वजा कहलाने में समर्थ हुई; उसी ध्रुवपद गीत को जब आधुनिक गायक आधुनिक ढंग से गाते हैं तो ध्रुवपद के प्रत्येक खण्ड-भाग को निश्चित रूप से उठाकर भिन्न-भिन्न प्रकारों से गाते हैं जिससे ध्रुवपद की पूर्वोक्त सभी क्रिया अपने स्थान से छिन्न-भिन्न हो जाती है। इस प्रकार के व्यतिक्रम से ध्रुवपद खण्डित हो जाता है। तब फिर उसे ध्रुवपद या ध्रुवपद की गायकी कहकर गाना उसके नाम-अर्थ की खिल्ली ही उड़ाना है। ध्यातव्य है कि यहां मेरा अभिप्राय ध्रुवपद के दुगुन, तिगुन, चौगुन, छगुन इत्यादि आधुनिक प्रकारों से है। ध्रुवपद को जब आप तिगुन करके उसके पूर्व-निश्चित लय-ताल में गायेंगे तो वह तुरन्त दादरा बन जायेगा। चौगुन त्रिताल और छगुन में खेमटा, खमसे की लय-गति में वह ध्रुवपद हो जाता है, क्योंकि लय ध्रुवपद की नहीं रहती हैं। इससे अच्छा है कि लयवाजी दिखलाने के लिए गायक पहले एक ध्रुवपद गावे, फिर दादरा, फिर एक त्रिताल और खेमटा गाकर अपना गायन समाप्त कर दे। इससे भिन्न-भिन्न प्रकार के बने गीतों द्वारा गायक वे लयें भी दिखाकर अपनी अनेक प्रकार की लय की जानकारी का श्रोताओं पर प्रभाव डाल सकता है और ध्रुवपद की वास्तविकता भी सुरक्षित रह सकती है। किन्तु एक बार जिस लय-ताल में गीत के रचनाकार ने जिस ध्रुवपद को रचा है उसे उसके स्वरूप से स्थान-भ्रष्ट करने के बाद उसे ध्रुवपद तो कहा ही नहीं जा सकता।

इस प्रकार आधुनिक ध्रुवपद-गीत का ढंग दुप्पट, तिप्पट और फिर चौपट से ध्रुवपद समाप्त हो जाता है और स्वर, श्रुति, आंस, मींड, सूत, खेंच, लपेट, छूट और गमकादि भेदों में शून्य होकर एक भ्रान्तिकारक ध्रुवपद-गायन का वीभत्स रूप हमारे सामने आता है। अतः ध्रुवपद-गायन के ढंग को ध्रुवपद की वास्तविकता पर दृष्टि डालते हुए ध्रुवपद नहीं कह सकते।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

चौथा प्रकरण

ध्रुवपद-गायन का प्रादुर्भाव और उसकी परम्परा

ध्रुवपद-गायन की शिक्षा के विषय को लेकर हमें कई प्रकार से विचार करना होगा। सर्वप्रथम तो यह कि भारतीय सिद्धांतों में गायन का महत्व कब से, किस प्रकार, कैसे-कैसे चला और उसका क्रम अथवा विकास किस हेतु को लेकर किया गया तथा उसकी अभिवृद्धि की शृंखला किस प्रकार बनी? इसके पूर्व भाषा के विषय को लेकर ध्रुवपद के भाषा-क्षेत्र की शृंखला की भूमिका को विद्यापति, जयदेव आदि के आश्रय से पाठकों के सम्मुख रखा जा चुका है। प्रस्तुत प्रसंग में इस बात पर विचार किया जायेगा कि गेय क्या है? किसको गायें? किसलिए गायें? गाने का अभिप्राय क्या है? पुनश्च्, किसने अगेय को गेय बनाया? अगेय को गेय किस प्रकार किया गया? इस पर कुछ वैदिक, औपनिषदिक तथा पौराणिक विचारों के परिप्रेक्ष्य में गीत की भूमिका को विस्तृत रूप से हमें अभीष्ट देखना है। यह पहले ही बताया जा चुका है—'ऋक् धूढः साम गीयते'। उसी का लक्ष्य है। पुरुषसूक्त की कण्डिका का 18वाँ मंत्र देखिए जिसमें कहा गया है—

वेदाहमेतम्पुरु षम्महान्तमादित्य वर्ण्णन्त मसदं परस्तात् ॥ तमेवव्विदित्वात—मेतिन्नानय पन्थाविद्यते येनाय ॥

पुनश्च् ऋष्यादि (1) ॐ वेदाहमित्यस्य नारायण ऋषिः। निच्यृदार्षी त्रिष्टुपछंद्। पुरुषो देवता। अर्थात्

वेदाहमेतंपुरुषं महान्तम्। अदित्यवर्णं तमसः परस्तात्। तमेव विद्वानमृनदूह भवति। नान्यः पथाविद्यतेऽयेनाय ॥

यदि यही वेदमन्त्र की पूर्व व्याख्या है तो उस अगेय को ही सबने गाया है। वही गेय है, जो ज्ञान का प्रकाश रूप, सदा से सर्वत्र, सर्वशक्तिमान है, रहा है और

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

रहेगा, जो अखण्ड, ब्रह्माण्ड, विस्तृत, असीम, आकाश-सा अगम्य और अनन्त है। उसी की तेज रश्मि ने कारण और कार्य को लेकर, चौवीस तत्त्व-स्वरूप चेतना के माध्यम से भावुक भक्तों की आत्मा में प्रवेश कर अनन्त अज्ञेय महत्ता को गेय कर लोकहितकारी आलोक प्रदान किया। उसी 'अनादि महान्त मादित्य आदि-पुरुष' को ऋषियों ने ऋक्, साम के सामंजस्य में समाहृत कर गाया और उन्हीं ऋषियों के पथ के अनुगामी आचार्यों ने उस अगेय को आत्म-समर्पण, आत्म-निवेदन का मृदुतर रूप देकर नाद-वेद के रूप में गाया। यही हमारी श्रृंखला है। जिस प्रकार ऋषियों का परम्परा-गायन वेद-मंत्रों में पाया जाता है, उसी प्रकार का गायन आचार्यों की परम्परा में सुरक्षित है जो अगेय को भावनायुक्त गेय बनाकर, उसके स्वरूप का प्रतिपादन कर, लोक-कल्याण-हित गेय हुआ और जिसे गाकर लोक ने उस महान् को पाया। आचार्यों ने सम्प्रदाय का प्रतिपादन कर उन्हीं मूलभुत सिद्धान्तों के द्वारा उसे अगेय में गाया। सिद्धान्ततः आचार्यगण ऋषियों के ही अवतार तथा पार्षदगण अर्थात् अनुचर पार्श्ववर्ती अंग-स्वरूप और भूषण माने गये हैं—जैसे कि विष्णुचित्त, रंगनायकी, भक्तिसार, श्री षठकोप, विप्र नारायण, कुलशेखर, मुनिवाहन आदि आचार्य। उनके गीतों का संग्रह 'दिव्य प्रबन्धम्' के रूप में श्री यमुनाचार्य ने रामानुजाचार्य को कण्ठाग्र कराया।

इस सम्प्रदाय में यजुर्वेद में कही गयी हिरण्यकेश-शाखानुसार उस अनन्त अखण्ड दिव्य अनादि सर्वेश्वर के स्वरूप को ही वेदोक्त उपासना की गयी है, जिसकी महाविष्णु, क्षीरशायी, श्रीमन्नारायण, सच्चिदानन्द, कमलनाभ, प्रकृत-पुरुष कहकर सभी ऋषि-मुनियों ने सदा से गाया, ध्यान किया और सायुज्य पाया है। कण्डिका के अठारहवें दिव्य वेद-मंत्र में इसी प्रकाश-पुंज रूप को मान-मिहिर माना है। सृष्टि के मूल धाता को धारण करनेवाला कमल भी इसी प्रकृति पुरुष की नाभि से उदीयमान है। वेदों से लेकर पुराणों तक में समस्त अवताराधीश भी इसी को प्रमाणित कर गाते आ रहे हैं। मच्छ-कच्छ से वामन, परशुराम और राम से लेकर कृष्ण और कल्कि तक में इसी की प्रचण्ड किरण की प्रभा विद्यमान है, जो वेदोक्त विधि से अर्चित होकर वैदिक, वैष्णवी-सम्प्रदाय को पुष्ट करने में सर्वसमर्थ सिद्धान्तों से सिद्ध है, उसी को भगवत्कृपा-प्रसाद-स्वरूप ऋषि-मुनियों ने प्राप्त कर भगवान् की प्राप्ति के लिए एक मार्ग की सूचना दी।

विष्णुगीत का उद्भव और विकास

कारण है, वैदिक सम्प्रदाय और कार्य है दिव्य-प्रबन्धम्, जिसके आधार पर अवतारों में सभी ने गीत-रचना की है। यह सर्वमत से निर्विवाद अकाट्य सत्य है और इतिहास द्वारा मान्य है। योगियों ने इसी कारण नाद को ब्रह्म-तत्त्व स्वीकारा है और इसी की उपासना, साधना की है। उपासना में षोड्शोपचार करते

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हुए उस अनन्त की यश-कीर्ति को प्रार्थना के रूप में गाकर, सुनाना, रिझाना मूल वस्तु है। इसी कारण सभी आल्वारों ने गेय पदों का निर्माण कर गाया, जिसे लोक में शास्त्रीयता की दृष्टि से विष्णुगीत के रूप में स्वीकार किया गया है।

विज्ञ मतों से विष्णुगीत नाम होने पर यह पुनः विचारने योग्य है कि विष्णु शब्द में महाविष्णु मूल प्रधान है। उन्हीं का सभी आल्वारों ने यशगान करते हुए वैदिक भाषा में अपने भावों को भरकर रचनाएँ की हैं, दिव्य भाव भरे हैं। सभी आल्वार वेद-शास्त्र के महावेत्ता एवं अद्भुत, अद्वितीय विद्यानिधान एवं प्रतिभापूर्ण हैं। इनके ग्रन्थों की भाषा इतनी उत्कृष्ट है कि उनकी सरल टीका आज तक नहीं लिखी जा सकी। नाद की साधना भी उनकी अनुपमेय मानी गयी है। श्री मुनिवाहन (तिरुप्पनाल्वार) तो इस नाद-विद्या में नारद के अनुरूप ही मान्य थे।

अस्तु, गीत-काव्य का विष्णुगीत आल्वारों से आरंभ होना मानव-बुद्धि में समाने के योग्य है। जहाँ तक साम्प्रदायिक संगीत के इतिवृत्त का प्रश्न है, उसके लिए इतिहास के आधार पर सर्वप्रथम श्री-संप्रदाय के द्वादश आल्वारों द्वारा की गयी वेदध्वनि, छन्द-गान, दिव्य-प्रबन्धम् आदि गीत के विकास को लक्षित करते हैं। अतः पथ-प्रदर्शक के रूप में गीति-काव्य के प्रसार का सारा श्रेय इन्हीं लोगों को प्राप्त है, जिनके द्वारा रचित चतुष्पदीय श्लोकों में महाविष्णु की चार भुजा, चार दिशा एवं चार वेदों के स्तुत स्वरूप की कल्पना, उन आल्वारों की वैदिक-भावना के अनुरूप रचे गए गीत हैं। उसी को दीर्घकाल बाद ध्रुवपद के चार चरण के रूप में अपनाया गया।

गीत के साथ-साथ नृत्य का भी प्राचीनतम रूप देवदासी-नृत्य के नाम से प्रचलित हुआ, जिसके आद्य-आल्वारों में श्री रंगनायकी अग्रगण्या तथा प्रमुख मानी जाती हैं। श्री रंगनायकी ने वाराही अवतार में पृथिवी के रूप में भगवान् द्वारा उद्धार पाकर उनसे सेवा-हेतु प्रार्थना की थी, अतः कालान्तर में श्री रंग-नायकी के रूप में अवतरित होकर वे श्री कमलनाथ की अर्द्धांगिनी बनीं। अपने स्वाभाविक भगवत्स्मरण-कीर्तन में उन्होंने प्रेममग्न होकर जो नृत्य किया है, वह भगवत्-नृत्य-समर्पण की पराकाष्ठा है, जिसे लोक ने आगे चलकर अपनाया और वर्तमान में जो पथभ्रष्ट हो गया।

वैदिक वैष्णव-सम्प्रदाय की ब्रह्मा से लेकर मरीचि, कश्यप, नारदादि, हयग्रीव द्वारा दीक्षित यमुनाचार्य आदि श्रीवैष्णव-सम्प्रदाय के प्रवर्तक द्वादश आल्वारों के द्वारा विष्णु के परम तत्त्वदर्शी गूढ़ भावों की उपासना भी हुई है। गान उनकी सर्वस्व आराधना का आश्रय था। प्रचारकों में उदारचेता रामानुजाचार्य तक हमारे इतिहास की शृंखला है। यह काल रामानुजाचार्य का है जो द्वादश आल्वारों के बाद हुए हैं। उनका काल विक्रम की दसवीं से ग्यारहवीं शती तक माना जाता है। यद्यपि श्री-सम्प्रदाय अति प्राचीन काल से दक्षिण में

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रचलित था, तथापि, उत्तर भारत में इसे फैलाने का श्रेय रामानुजाचार्य को ही प्राप्त है। इसी कारण इसे प्रायः 'श्री रामानुज-सम्प्रदाय' कहा जाता है। दक्षिण भारत के अतिरिक्त किसी भी मंदिर में श्री-सम्प्रदाय के गायकों आल्वारों के दिव्य-प्रवन्धम् का गान प्रचारित नहीं हुआ। हाँ, इसके अन्य विधान वेद-पाठ, संस्कृत विद्या की पाठशालाएँ आदि श्री-सम्प्रदाय के प्रायः सभी मंदिरों में अपनाए गए, जिसका मूल कारण यह है कि इस सम्प्रदाय में सारी पूजा वेद-मंत्रों से ही होती है। पूजा के उपरान्त भी द्वादश आल्वार-चरितामृत के पाठ के पहले सामवेद का गायन करना पड़ता है। इसलिए विशिष्ट रूप से सम्पन्न धनी मंदिरों में ब्रह्मोत्सवों पर दक्षिण से इसके ज्ञाताओं को बुलाकर भगवान् को संगीत सुनवाया जाता था। उसी समय आल्वारों द्वारा दिव्य-प्रवन्धम् का गायन भी सुनवाया जाता रहा है। इसे सुनकर ही इस प्रसंग को मैंने यहाँ रखा है। आल्वारों द्वारा दिव्य-प्रबन्धम् के गायन से गीत-काव्य का प्रादुर्भाव मानना विद्वानों के सिद्धान्त से प्रमाणयुक्त है। द्वादश आल्वारों के अतिरिक्त और भी आल्वार हुए अवश्य, किन्तु वे सब वेद-शास्त्र के ही ज्ञाता एवं प्रकाण्ड पण्डित माने गये। किसी के नाम से कोई प्रबन्ध नहीं मिलता है। वैसे तो किसी भी दिव्य-प्रवन्ध में किसी-न-किसी आल्वार का नाम समर्पण में गाया जाता है, तथापि पूर्वोक्त आल्वारों के अतिरिक्त प्रबन्ध-गान की रचना श्री-सम्प्रदाय के किसी भी आचार्य के द्वारा मानने या सुनने में नहीं आयी।

गीत-संगीत तथा नाद-विद्या की सेवा, श्री-सम्प्रदाय के बाद श्री हरिदास स्वामी के साथ आरम्भ होती है। यद्यपि श्री वल्लाभाचार्य अवस्था में इनसे बड़े थे और नाद उनके यहाँ भी उपासना में महत्वपूर्ण है; किन्तु उनके सम्प्रदाय के सभी गायक प्रायः स्वामी हरिदास के द्वारा ही संगीत-विद्या को योग्य रीति से प्राप्त कर भगवत्सेवी संगीतज्ञों की श्रेणी प्राप्त कर सके। स्वामी हरिदास और हितहरिवंश जी के संसर्ग से यह साम्प्रदायिक गीत-काव्य गान-कला के रूप में पल्लवित हुआ। इसकी श्रृंखला अबाध गति से मुखरित, विकसित, प्रसारित और पल्लवित हुई।

स्मरणीय है, श्री हितहरिवंश तथा हरिदास जी एक ही भाव के उपासक, परम मित्र और एक-दूसरे के अंतरंगी थे। दोनों ने हरिदास के ही द्वारा भगवान् की सेवा का प्रधान अंग राग पुनः भोग निर्धारित किया। यही माननीय है। हरिदास ने केलिमाल नाम से भगवान् श्री राधा-कृष्ण के अनेक लीला-विहार को संक्षिप्त शब्दों में गूढ़ भावों को पिरोकर रस-रहस्य के गीत लिखे। इन ध्रुवपदों की शब्द व पंक्तियाँ आल्वारों के दिव्य-प्रबन्धम् के समान ही स्वल्प शब्दों में विस्तृत, गूढ़, तथा रसमय भावनाओं की अभिव्यंजना करते हुए अपनायी गयी हैं। ऐसी धारणा मैंने इन दोनों सम्प्रदायों के गायन को

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सीखकर बनायी है। उल्लेखनीय है, दिव्य-प्रबन्धों में भिन्न-भिन्न आचार्यों द्वारा अनेक प्रकार के छन्द अपनाये गये हैं, जो श्री हरिदास की कृतियों में नहीं मिलते हैं। उनके गीत दो ही छन्दों में हैं, उनमें भी 'पड़ा' छन्द विशेष है। गीतों की राग-शृंखला मात्र अट्ठारह राग-रागिनियों में ही विभाजित है, जो उनकी वाणी में व्यक्त होकर बाद में उनके शिष्यों द्वारा भी व्यक्त की गयी।

इसी प्रकार हितहरिवंश जी के भी कुछ थोड़े-से ही गीत हैं जिनकी संख्या चौरासी तक सीमित है। श्री हरिदास के समान हरिवंश ने भी उपदेशपरक आदेश एवं उपासना-विषयक् तुलनात्मक भावनाओं के अलग-अलग गीत लिखे हैं। ये स्फुट कहलाते हैं। हरिदास स्वामी के समान हरिवंश के गीत भी ध्रुवपद की ही वाणी में हैं। किन्तु इन्होंने साहित्य के अन्तःकरण को व्यक्त करते हुए छन्दों में ऐसी उच्च परम्परा को व्यवहृत किया है जिसके गूढ़तम भावों के आगे सिर झुक जाता है। ध्रुवपद परम्परा में हरिवंश जी की कृतियों में रागों और तालों की व्यवस्था बड़ी श्रेष्ठ है—यद्यपि संगीत की साधना इन्होंने हरिदास के ही सम्पर्क में रहकर की थी, किन्तु, कई बातों में ये उनसे आगे निकल गये हैं। इनके ध्रुवपदों में मैंने कला की विशिष्टता देखी है। साहित्य की दृष्टि से हरिवंश जी के गीत बेजोड़ हैं। ऐसी महान् साहित्यिक लोगों की धारणा है। श्री जवाहर लाल चतुर्वेदी और डॉ० विजयेन्द्र स्नातक जैसे शोधकों ने इस विषय पर उच्च कोटि के साधनापूर्ण शोध-ग्रन्थ भी प्रकाशित किये हैं। सच तो यह है कि हरिवंश जी के किसी पद की समता अब तक, आज तक न हो सकी है। यत्किंचित् सूर ने उनकी छाया उतारने में सफलता पायी है। गीत-काव्य और ध्रुवपद की परम्परागत शैली में श्री हरिदास और हरिवंश के गीत कई श्रेणियों में विभक्त हैं जिनमें रास के पद भी सम्मिलित हैं।

हरिवंश या हरिदास के संसर्ग में आकर जिन लोगों ने सम्प्रदाय की दीक्षा ली उन्होंने भी सेवा के प्रधान अंग संगीत को भलीभाँति सीखा और उसकी साधना करते हुए भगवान् की आराधना की। इन लोगों के द्वारा संगीत के श्रेष्ठतम क्रियाकलाप का विशिष्ट रूप में प्रचार किया गया। गीत-काव्यकारों में वल्लभ सम्प्रदाय के अष्टछापी कवि-गायक विशेष प्रसिद्ध हैं। किन्तु यह जानना आवश्यक है कि भगवत्सेवा के मृदुतर भाव और राग-भोग की व्यवस्था वल्लभाचार्य के वृन्दावन-निवास से बहुत पहले स्वामी हरिदास सम्प्रदाय तथा हरिवंश के सम्प्रदाय में विशेष रूप से आरम्भ हो गयी थी जिससे प्रभावित होकर वल्लभाचार्य ने अपने सम्प्रदाय में इन आचार्यों की उपासना-धारणा को, राग के बाद भोग को, हरि-सेवा में प्रधान रूप से आरम्भ किया। सामान्यतः इसे आजकल हवेली-संगीत कहते हैं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हवेली संगीत में आठ साहित्यिक संगीतज्ञों ने अष्टछाप के नाम से भगवत्सेवा के अनुकूल पदों की रचना की, जो कीर्तन के रूप में प्रचलित हैं। इन गीतों में काव्यगत विषय अपने को संगीत कला की परिधि में न रख सका और वह विशुद्ध काव्य की श्रेणी में जा मिला। अतएव मेरी दृष्टि में इसे गीत-काव्य मानने की अपेक्षा काव्य-प्रधान गीत मानना अधिक उचित है। इसका तात्पर्य यह नहीं है कि इसके रचयिताओं ने संगीत-योग्य-काव्य पर ध्यान नहीं दिया। वस्तुतः काव्य की विस्तृत पंक्तियों ने राग-विद्या को स्वल्प परिमाण में ग्रहण किया है—यह मेरी विवेचनात्मक धारणा है।

गीत में स्वरों के अपने विशेष फैलाव के कारण काव्य-पंक्तियों के अक्षरों से युक्त शब्दों, मार्मिक गूढ़ भावों को प्रयत्नपूर्वक अल्प पंक्तियों में रखना ही गीत-काव्य कहलाता है। अधिक लम्बी-लम्बी पंक्तियों और बहुत-से चरणों का गीत राग के विस्तार में हर प्रकार से बाधक सिद्ध होने के कारण संगीत-विद्या की दृष्टि में महत्त्व नहीं प्राप्त कर सकता। यह मेरी धारणा है। यही धारणा उन विचारशील विद्वानों की भी हो सकती है जिन्होंने आचार्यों के द्वारा गीत-काव्य की परम्परा विकसित होने के विषय में शोध करने का श्रम किया होगा।

इस प्रकार यह स्पष्ट हो जाता है कि विष्णु-गीत का उद्भव व विकास कैसे हुआ तथा किस प्रकार उसका सर्वत्र प्रसार व प्रचार सम्भव हो सका। इसी सन्दर्भ में यहाँ यह जान लेना भी उचित है कि इन्हीं महान् व्यक्तियों से भारत के संगीत-विद्वानों की परम्परा चली तथा संगीत-कला के ऐसे उत्तमोत्तम गायक सम्पूर्ण भारत भर में फैले जिनके द्वारा रचित गीतों में भारतीय संगीत की सभी श्रेष्ठतम गायन-कलाएं विद्यमान हैं।

महान् सांगीतिक गायकों का योगदान

संगीत में साहित्यिक और कला-सौष्ठव की दृष्टि से प्रगति पर विचार करते हुए हित-सम्प्रदाय अत्यन्त श्रेष्ठ प्रतीत हुआ। गायन-योग्य साहित्य की श्रेष्ठता कहाँ से किस प्रकार मुखरित हुई, यही जानना प्रस्तुत प्रसंग में हमारा लक्ष्य है। ऊपर मैंने स्वामी हरिदास एवं हितहरिवंश को आल्वारों द्वारा गाये जाने वाले विष्णु-गीत से प्रभावित हो रची गयी कृतियों के सर्वश्रेष्ठ अधिनायक के रूप में प्रमाणित किया है। इनके पूर्वकालिक रचयिताओं के गीत जिस प्रकार पहले प्रमाणस्वरूप दिये गये हैं उसी प्रकार यहाँ भी एक गीत प्रमाणस्वरूप उद्धृत है। इसके रचनाकार स्वामी रसिक मुकुट मणि मंडलाखण्ड श्री राधे रसिक वर-रीति प्रेमानुरागी महाभाग श्री हरिवंश जी हैं—

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ध्रुवपद : राग परज

स्थायी :

तू रति-रंग भरी अति देखियत है री राधे !

अंतरा :

रहसी रमि मोहन सों वह रैन गति अति शिथिल
प्रकट पलटें पट गौर अंग पर राजत ऐंन ।

संचारी :

जलज कपोल ललित लटकति लट
भृकुटि कुटिल ज्यों धनुष धृत मैंन ।

आभोग :

सुंदर रहव कहव कंचुकि कत कनक-कलश कुच बिच नख दैंन ।
अधर बिम्वदल मलिन आरसयुत अरु आनंद सूचित सखि नैंन ।
हित हरिवंश दुरित नहीं नागरि, नागर मधुप मथत सुख नैंन ।।

यह ध्रुवपद मदनमोहन पखावजी वृन्दावनवाले से मुझे प्राप्त हुआ। मदनमोहन पखावजी घरानेदार, बड़े अच्छे पखावजी थे उन्होंने ग्वारिया जी तथा भूरे उस्ताद रासधारी, जो सारंगी के बहुत बड़े वादनाचार्य थे और जिनके पास प्राचीन ध्रुवपदों का विपुल भंडार था, से गायन सीखा था। 86 वर्ष की अवस्था में सन् 1938 में आपका स्वर्गवास हुआ।

इस ध्रुवपद में जिस गूढ़ रहस्य का उल्लेख किया गया है, उसकी व्याख्या करना कठिन है। गीत-योग्य काव्य, काव्य के शब्द, शब्दों के भाव, भावनायुक्त संपूर्ण पंक्तियाँ, अनुप्रास एवं छंद प्रबन्धात्मक हैं। इनका गुंथन सर्वोत्तम और सर्वोत्कृष्ट है। श्री हितहरिवंश जी के आत्माभाव की कोमल कुसुमावली जिस प्रकार उनके सभी प्रबन्धों में मुखरित हुयी है उसकी व्याख्या करना दुष्कर कार्य है। वह स्वयमेव उनके सुरुचिपूर्ण सरस शब्दों से प्रतिध्वनित होती है। श्री हरिवंश वस्तुतः एक ऐसे महान् रचनाकार हैं जिनके गीतों की तुलना केवल स्वामी हरिदास के गीतों से की जा सकती है। मैं पहले ही स्वामी हरिदास को गीतकारों में आर्षप्रयोग-प्रणेता कह चुका हूं। यहां एक गीतोद्धरण से मैं उनका परिचय दे रहा हूं। परन्तु इसके पूर्व इस गीत की प्राप्ति का मार्ग बताना भी आवश्यक प्रतीत होता है।

ब्रज के अन्तर्गत छाता ग्राम-निवासी श्री गजानन मिश्र एक प्रसिद्ध ध्रुवपद-गायक हुए हैं। वे प्रसिद्ध महात्मा संगीतज्ञ ग्वारिया बाबा तथा चौथ्या नामक रासधारी के सांगीतिक शिष्य थे। सन् 1958 में 75 वर्ष की अवस्था में

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

उनका स्वर्गवास हुआ। पं० गजानन मिश्र को प्राचीन कठिन तालों की बहुत-सी सांगीतिक चीजें याद थीं जो इनको बुंदेलखंद-अंतर्गत चरखेरी रियासत के पखावजी भवानीदास प्रज्ञाचक्षु से प्राप्त हुई थीं। ठाकुर नवावअली के यहाँ भवानीदास ने मिश्र जी के साथ बहुत समय तक पखावज बजाया था। भवानी दास के पूर्वज नवाब वाजिदअली शाह के दरबारी गायक थे। भवानीदास जी को बाबू जोधसिंह बनारसवाले ने प्रेम से मृदंग-विद्या सम्पूर्ण रीति से प्रदान की थी, किन्तु श्री भवानीदास को अपने घर की विद्या ध्रुवपद-धमार अपने नाना द्वारा बहुत अच्छे रूप में मिली थी। उन्हीं में से उन्होंने बहुत-सी चीजें गजानन मिश्रा को सिखायीं, जो इस इतिहास के साथ मिश्र जी से मुझे प्राप्त हुईं। भवनीदास जी ने मृदंग-विद्या में अत्यधिक कीर्ति प्राप्त की। इस दृष्टि से मिश्र जी की परम्परा श्रेष्ठ और प्रामाणिक है, इसलिए तर्क की कसौटी पर यह इतिहास देना आवश्यक था। यद्यपि यह ध्रुवपद उस रागिनी में उपोहित नहीं है जिसमें स्वामी हरिदास ने रचा था, फिर भी मिश्र जी ने मुझे जिस रागिनी में सिखाया था वह अपनी जगह पर है। मिश्र जी के तीन गुरू थे—(1) श्री ग्वारिया बाबा, (2) चौथ्या जी रासधारी, और (3) भवानीदास।

यह तर्क अकाट्य है कि ग्वारिया बाबा उत्तर तथा दक्षिण भारत की दोनों संगीत प्रणालियों के महान् ज्ञाता एवं क्रियाशील गुणी विद्वान् थे। वे दतिया राज्य में भारतभूमि के ताल-विद्या-संगीत के महारथियों के बीच तेरह वर्ष तक-सम्मानित रहे। उस समय दतिया की राजगद्दी पर महाराज भवानी सिंह विराजमान थे। यह ग्वारिया जी के प्राचीन संगीत का योग्य विद्वान होने का प्रमाण है। स्वामी हरिदास के 108 गीत जिन 18 रागिनियों में हैं, उनमें सिंधुरा रागिनी नहीं है। जिस वसंत में पं० गजानन मिश्र ने मुझे दो ध्रुवपद और दिये वे भी प्राचीनता की दृष्टि से यद्यपि अमान्य हैं किन्तु उनके स्वर-विन्यास उनके पुरानेपन की याद दिलाते हैं--यह हमें मान्य है, परन्तु उनकी स्वरावली स्वामी हरिदास कृत नहीं है। यह तथ्य स्वामी हरिदास की साम्प्रदायिक शिष्य-परम्परा में श्री नरसिंहदास से प्राप्त ध्रुवपदों के बंधान से मैं प्रमाणित कर सका हूं, तथापि उनकी शब्दावली सर्वमान्य स्वामी जी की ही है।

प्रसंगवश यहाँ ग्वारिया बाबा की सांगीतिक शिक्षा की परम्परा के विषय में बतलाना भी आवश्यक प्रतीत होता है। बाबा ने बाल्यावस्था में 18 वर्ष की अवस्था तक दादा हैदरसेन से रीवाँ में अपने पिता के संरक्षण में रहकर ध्रुवपद प्रणाली की उत्तम शिक्षा प्राप्त की थी। जब हैदरसेन, व्यंकट रमण के स्वर्गस्थ होने पर जयपुर में रामसिंह के पास आ गये, तब बाबा के पिता ने घर पर ही

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अभ्यास कराया । बाद में ग्वारिया जी कई राज्यों में गायक रहने के बाद दतिया आये थे । इस स्थान पर रहने से पूर्व वे किसी दाक्षिणात्य से सरस्वती वीणा और संगीत-शास्त्र का भी अध्ययन कर चुके थे । दतिया में उनके घर पुत्र उत्पन्न हुआ और भवानी सिंह के कुँवर के गद्दी पर आने के बाद अपनी गिरफ्तारी की बात सुनकर इन्होंने गृह-त्याग कर दिया और साधु हो गये। कारण यह था कि ग्वारिया जी बाल्यावस्था में कुंवर के सांगीतिक शिक्षक रह चुके थे और एक बार उन्होंने कुँवर को मारा भी था, अतः उस समय की प्रतिशोध-मूलक भावना से प्रेरित कुँवर द्वारा वह बंदी बनाने के योग्य समझे गये थे । बाद में 80 या 90 वर्ष की अवस्था में सन् 1940 में वह वृन्दावन में स्वर्गवासी हुए । उनसे कई बार मुझे संगीत-चर्चा करने का अवसर मिला । परन्तु प्रायः वह भावना में मौन रहकर, लिखकर बातें करते थे । 'व्रजराज सखा' इनकी पदवी थी । पं० गजानन मिश्र इनके पुराने शिष्यों में से थे और हैदरसेन-वंश के ध्रुवपद एवं वीणा के बादशाह माने जाते थे । किन्तु उक्त ध्रुवपद की स्वरावली लगभग सौ वर्ष पूर्व की ही प्रतीत होती है ।

ध्रुवपद-समीक्षा की कसौटी

वस्तुतः ध्रुवपद-संगीत में गीत-काव्य की तरह रागवाची स्वरों की कल्पना ध्रुवपद-प्रणाली की दृष्टि से बड़ी गहन होती है। ध्रुवपद-प्रणाली के राग अन्य गीत-प्रणालियों के राग-स्वर-क्रमों से भिन्न हैं। यह बात इस प्रसंग को लेकर पाठकों के सामने प्रत्यक्ष की गयी है । जिस प्रकार तन्तकारों में वीणाकारों के राग बहुत प्राचीन रीति के और विभिन्न रीति से चलने वाले होते हैं, उसी प्रकार वीणा के राग भी यद्यपि ध्रुवपद के ही हैं तथापि वीणाकारों के कई राग वीणा की रीति से चलन-प्रस्तार पृथक् बताते हैं । यदि किसी वीणाकार ने ध्रुवपद की रचना स्वयं की है, अथवा उसके शब्द काव्यकार के और स्वर वीणाकार के हैं तो अध्ययनशील वीणा का विद्यार्थी तुरन्त पहचान लेता है कि यह स्वर-कल्पना किस वीणाकार की है । यही कसौटी यहां भी काम में लायी गयी है।

वास्तव में इस विशेष प्रसंग के द्वारा पाठकों को ध्रुवपद की तीन परख बताने की चेष्टा की गयी है :

1—केवल नाम शब्द से ही ध्रुवपद मान लेना अनुचित है।

2—ध्रुवपद की रचना किसी बड़े महापुरुष अथवा नामी कलाकार द्वारा की गई है, इस आधार पर उसकी स्वर-रचना पूर्वकालिक है—यह अंधविश्वास भ्रमात्मक है।

3—जिस व्यक्ति से हमने किसी ध्रुवपद को सीखा और उसकी गुरु-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

परम्परा ऐतिहासिक है, यह मानकर किसी अन्य गीत-प्रणाली के रागों में कोई प्राचीन ध्रुवपद उसने सिखलाया—इस आधार पर अन्य गीत-प्रणाली के राग को ध्रुवपद-प्रणाली का राग मान लेना सर्वथा तर्कहीन और अविश्वसनीय है।

जिस ध्रुवपद पर यह राग-विषयक् शोध आधारित है, वह इस प्रकार है :

ध्रुवपद

स्थायी :

माई सहज जोरी प्रकट भई जू।
रंग की गौर श्याम घनदामिनी जैसे ॥

अंतरा :

प्रथमहुं हुती अवहूँ आगेहूँ रही है।
न टरी है तैसे ॥

संचारी :

अंग-अंग की उजराई सुघराई सुन्दरता ऐसे ॥

आभोग :

श्री हरिदास स्वामी स्यामा कुंजविहारी सम वयस वैसे ॥

इस ध्रुवपद के अर्थ बड़े गहन हैं जिसे मैंने स्वामी हरिदास जी के शिष्य, परम्परागत महान् गायक महात्मा नरसिंहदास जी से सम्प्रदायगत संगीत-प्रणाली की ध्रुवपद-शिक्षा के दौरान प्राप्त किया है। प्रस्तुत ध्रुवपद का भाव इस प्रकार है—

"सहज प्रकृति-स्वरूप श्रीकृष्ण और राधा सदा से ही हैं। समय-समय पर निज भक्तों की भावना के वशीभूत हो ललित लीला प्रकट रूप से करते हैं ॥ 1 ॥

"श्री कृष्ण में ही राधा आत्म तेज-स्वरूप हैं, जो पहले भी थीं, आज भी हैं और आगे भी वह युगल जोड़ी सदा रहेगी। [इस व्याख्या में श्री राधा और कृष्ण नवीन अवतारी हैं, ऐसी धारणा का निराकरण किया गया है। यही ईश्वर जगदाधार स्वरूप है, इसकी पुष्टि की गयी है।] ॥ 2 ॥

"प्रकृति-स्वरूप राधा और पुरुष-स्वरूप श्रीकृष्ण, इन्हीं दोनों में ब्रह्माण्ड वेष्टित है। इनसे भिन्न कुछ भी नहीं है। साथ ही एक-दूसरे में दोनों घन और दामिनी की भांति अन्तर्निहित हैं। [यहाँ पलमात्र की झलक से अति प्रभा-पुंज विकसित श्री राधा जी की मर्मस्पर्शी पुष्टि गुह्यरूप से की गयी है। यह स्वामी जी की आंतरिक भावनाओं का साम्प्रदायिक अर्थ है।] ॥ 3 ॥"

शब्दार्थ, भावार्थ एवं तत्वार्थ रहस्यमय गूढ़ार्थ के कारण इस चार पंक्ति के ध्रुव-पद की मात्र दो ही पंक्तियों को भावार्थ में लाया हूँ। इसी प्रकार स्वामी जी के प्रायः

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ध्रुवपदों का विवेचन रहस्यपूर्ण भावना से पूरित, राग की गूढ़ता से ओतप्रोत है तथा स्वामी हरिदास के इस कथन के अनुरूप है—'स्यामा अटपटी बोलत और, कहत कुछ और ही भने।'

ध्रुवपद की रागवानी में अपनी मर्यादा का भी संकेत किया गया है। ध्रुवपद-गायकी में रागों की अपनी प्राचीन शैली गायकी के आधार पर निहित है, जिसमें ध्रुवपद के समान विशिष्ट संगीत-मर्यादा को शास्त्रीयता की सीमा में आवद्ध करनेवाली वीणा का बहुत बड़ा योगदान है। इसी के साथ मृदंग नामक ताल-विधा ध्रुवपद की महान् सहायक है जिसकी विवेचना अगले प्रसंग में की जायेगी। गीत-काव्य की ध्रुवपद-प्रणाली के अन्तर्गत रास-प्रसंग के सांगीतिक वैभवपूर्ण ऐतिहासिक प्रमाणों को यहां संक्षेप में दिया जा रहा है, जिसे रचनाकारों की प्रणाली में आगे व्यक्त किया जायेगा। यहां पर केवल भारतीय संगीत-विधा की उन गुप्त अथवा प्रकट परम्पराओं को आधार मानकर विषय-विवेचन प्रस्तुत किया गया है जिन्हें पूर्वाचार्यों ने अपनी रचनाओं के अन्तर्गत ध्रुवपद को परिवेष्टित करते हुए मान्यता एवं महत्ता प्रदान की थी। अन्यथा, गीत-काव्य के विषय में मुझे एक ऐसी प्रणाली भी मालूम है जिससे भारत के सभी संगीतकार प्रायः अनभिज्ञ हैं। अतएव इस प्रसंग को यहाँ देना भी आवश्यक नहीं प्रतीत हुआ तथापि यह वतलाना अपेक्षित है कि स्वर-श्रुतियों की कल्पना द्वारा प्रकृति पर ऐसे प्रयोगों में सफलता पाना इसी सम्प्रदाय का काम था, जिनमें संगीत-साधकों के आचरण का शुद्ध होना अनिवार्य था। भारतीय संगीत-विधा में जो परम्पराएँ पूर्वाचार्यों द्वारा गुप्त अथवा प्रकट रूप से मान्य हैं, उनमें भारतीयों की मनोभावना किस-किस वृत्त को लेकर किस प्रकार के गेय-काव्य के रूप में प्रस्फुटित हुई, उनमें जो यथा-सम्भव मुझे प्राप्त हो सकी उनका दिशा-संकेत किया गया है, जिसमें ध्रुवपद-प्रणाली का प्रादुर्भाव कैसे हुआ और किस-किस प्रकार, किन-किन आचार्यों द्वारा यह प्रणाली विकसित हुई, इसे मैंने प्रस्तुत किया है।

उपरोक्त विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि ध्रुवपद की शिक्षा ही भारतीय-गायन की शिक्षा है। हम यहां किसी भी अन्य प्रकार की गीत या गायन-प्रणाली की टीका तो क्या, कोई चर्चा भी करना उचित नहीं समझते।

कहने की आवश्यकता नहीं, कि संगीत-शास्त्र के श्रेष्ठ एवं विज्ञ निर्माता इसी भारत में हुए हैं, जिनके विचार नाद-तत्त्व के विवेक को विस्तृत रूप से समझाने में संसार में सर्वोपरि हैं। नाद की प्रत्येक कला का मर्म हमारे शास्त्रकारों ने बड़ी गूढ़ विवेचना के साथ प्रकट किया है। वे मात्र शास्त्रकार ही न थे, क्रियाशील गायन एवं वादन में भी उन्हें उतनी ही मार्मिक दक्षता प्राप्त थी। उनके सिद्धान्तों का पुष्टिकरण उन्हीं की भाषा, गीत, शब्द, शैली,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

साहित्य एवं भारतीय भावनाओं के परिपोषक गीतों में अन्तर्निहित है जिसे अगर हम पूरे विश्वास के साथ भारतीय गायन-प्रणाली के नाम से सम्बोधित कर सकते हैं, तो वह एकमात्र ध्रुवपद-गायन ही है। इस कला पर हम भारतीयों की ही सांस्कृतिक छाप है। यह गायन-प्रणाली किसी भी विदेशी संस्कृति की अनुकृति नहीं है और न आज तक इतिहास में यह प्रमाणित ही किया जा सका है। आठ सौ वर्ष से सम्मान प्राप्त करनेवाला ध्रुवपद-छंद का गायन ही विशुद्ध भारतीय गायन है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पांचवां प्रकरण

ध्रुवपद-गायन के लिए आवश्यक योग्यताएं

ध्रुवपद-गायन के लिए किन-किन योग्यताओं की आवश्यकता होनी चाहिए, इस विषय पर हम यहां दो प्रकार से विचार करेंगे :

(1) ध्रुवपद-गायन के अंतरंग विषय की योग्यता।

(2) ध्रुवपद-गायन के बहिरंग विषय की योग्यता।

ध्रुवपद-गायन के विषय में मैं पहले ही कह चुका हूं कि यह गायन-प्रणाली क्रम से वेद-पाठ के ऋक्-साम-सामंजस्य से प्रारंभ होती है। इससे सिद्ध होता है कि ध्रुवपद-गायन करनेवाले को सर्वप्रथम गीत के शब्दों का शब्दोच्चारण, वर्णों की स्पष्टता, श्वास की मर्यादा में रहकर उच्चारण करने की अच्छी योग्यता होनी चाहिए। शब्दों के उच्चारण को यथार्थ रूप से जानने के लिए संस्कृत भाषा की शक्ति भर साधना परम आवश्यक है। ध्यातव्य है कि शब्दों के रूप-क्रिया का उच्चारण करने के लिए विशेष स्थान और प्रयत्न बताये गये हैं। इन्हें स्पष्ट करने के लिए महर्षि पाणिनि ने 'अष्टाध्यायी' में शब्दों की क्रिया का प्रतिपादन किया है। अतः पाणिनि के व्याकरण-सूत्रों से शब्दों की साधना, अभ्यास एवं ज्ञान प्राप्त करना आवश्यक है। उदाहरणार्थ, 'ऋटुरसाणां मूर्धा इचुयशांना तालु, इत्यादि; अर्थात् किस अक्षर का उच्चारण किस स्थान से किया जाय कि वह श्रोता को स्पष्ट सुनाई दे और साथ ही अपने मूल स्वरूप को भी पूर्ण स्पष्ट रूप से व्यक्त कर सके—यही उसका अंतरंग विषय है।

शब्दोच्चारण के बाद शब्दों के भाव पर भी ध्यान देना आवश्यक है, अन्यथा मतिभ्रम हो जाता है। दूसरे, उन शब्दों पर स्वरों की ध्वनि का अपेक्षित भार देना अथवा कंप करना, इसका भी गायक को सम्यक् रूप से ज्ञान होना चाहिए, अन्यथा उच्चारण-भ्रष्ट हो जाता है और शब्दों की भाव-व्यंजना, इस बात का ध्यान न रखने के कारण, नष्टप्राय हो जाती है। अतः ध्यानपूर्वक, दृढ़ता से स्वरों का शुद्ध उच्चारण कर उसके भावों की सुन्दर अभिव्यक्ति करने के लिए साहित्य-शास्त्र का भी ज्ञान परमावश्यक है।

ध्रुवपद में स्वर-विद्या प्राण है, शब्द शरीर है, भाव रूप है और भावना उसका हृदय है। अतः कहने की आवश्यकता नहीं, कि स्वरों में

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जितनी श्रेष्ठता होगी, प्राण उतना ही तेजवान् होगा; निस्तेज गुंजन निकृष्ट संज्ञा के कहे जायेंगे। शब्द जितना उत्तम एवं साहित्यपूर्ण होगा, शरीर उतना ही उत्तम होगा। शब्द जितने हल्के होंगे उनकी गुरुता भी उतनी ही लघु होगी। भाव जितने अनमोल होंगे, लावण्यता उतनी ही सफलता के साथ प्रदर्शित होगी। यह स्वाभाविक है।

दोषपूर्ण गायन

स्वरों की तारतम्यता पर विचार करते समय कंठ द्वारा नाद-ध्वनि की साधना को रीति का संयम देने के लिए तार की नाद-ध्वनि पर भी दृष्टिपात करना आवश्यक है। कई वार ऐसा देखने में आया है कि गाते समय गायक एड़ी से लेकर चोटी तक का बल लगाकर पूरी शक्ति से स्वरों को भयावह तथा चीत्कार में परिणत करके गाते हैं। इसे शास्त्र ने निषिद्ध माना है। जहां तक स्फूर्ज, निर्वंजन का प्रश्न है, ऐसे गायक तो अब दिखाई ही नहीं देते; तथापि कण्ठ की कर्कश गति को लोग प्रयोग में अवश्य ला रहे हैं और इसी को भ्रमवश वे नाद-घोष अथवा स्वर-घोष मानते हैं, जो नितान्त असत्य है। इसी कारण पूर्वाचार्यों ने कंठ द्वारा नाद-ध्वनि की साधना को तार के अधीन कर दिया है। कंठ की ध्वनि का सदा तार की ध्वनि में वेष्टित होना परम आवश्यक है।

गलत गायकी में कलावन्तों की दृष्टि से जो भेद कहे गये हैं, उन्हें यहां प्रचलित सांगीतिक समाज के गायक-वादकों की भाषा में नीचे दे रहा हूँ जिससे समझाने में सुगमता हो। यह भेद मुझे जयपुर के मरहूम उस्ताद करामत खां धमारिये ने बताए थे—

1. कसदार गायकी;
2. रसदार गायकी;
3. अताइयाना गायकी;
4. बहकी हुई गायकी;
5. दमदार गायकी;
6. आंसदार गायकी;
7. सांसदार गायकी;
8. वेतुकी गायकी;
9. बिखरी हुई गायकी;
10. दमखम की गायकी;
11. गूंजदार गायकी;
12. भींगी हुई गायकी;

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

13. हल्की गायकी;
14. तरल गायकी;
15. गहरी गायकी;
16. सरल गायकी;
17. मींड-सूत की गायकी;
18. झोल और झपेट की गायकी;
19. घोर और प्रहार की गायकी;
20. ध्यान और भावना की गायकी; तथा
21. कलापूर्ण गायकी।

इस प्रकार की अच्छी-बुरी गायन-कला की क्रियास्पद बातें हैं।

तात्पर्य यह, कि शरीर की विशेष शक्ति द्वारा भी नाद-ध्वनि के गुंजन की ही प्रशंसा गान्धर्व-विद्या में सर्वमान्य हुई है। किन्तु इसका अभिप्राय यह नहीं है कि कंठ-रंध्र को संकोच देकर नाद-ध्वनि के प्रस्फुट रूप को कुण्ठित कर दिया जाए। उसे तो स्वर का जीर्ण एवं क्षीर्ण स्वरूप कहा जायेगा। कुन्द स्वरों की श्वास-क्रिया में गायन करना गुण नहीं, दोष ही माना जायेगा। स्वामी हरिदास ने, जो इस ध्रुवपद-प्रणाली के सर्वमत से स्वीकृत सिद्ध एवं गायनाचार्य थे, एक ध्रुवपद में कहा भी है—

भीनी भीनी वीण की, प्रवीण सुरतानन की,
कण्ठ ते दिखाय गयो राधे गुण आगरी।

सारंग में यह ध्रुवपद ठीक अपनी वर्णित कलाओं से पूर्णतः सुसज्जित है। इसी प्रकार मालगुंज रागिनी में भी नागरीदास कृत एक ध्रुवपद है, जिसमें भगवान् श्रीकृष्ण को श्री राधारानी वीणा बजाकर गायन सिखला रही हैं। ध्रुवपद इस प्रकार है—

प्यारी जू बजावें बीन, गावत हैं प्रिये प्रवीण।

यह तो भक्ति-भावना से पूर्ण संगीत-कला के आचार्यों की कृति हुई। वर्तमान काल के तर्कवादी, जिनकी बुद्धि में वितर्कों की ही कल्पनाओं का उद्वेग उठता रहता है, वे विद्या के मर्म से, भावना का गीत कहकर, दूर भाग जाते हैं। किन्तु गत सोलहवीं शताब्दी से लेकर उन्नीसवीं शताब्दी के अंत तक जो मुसलमान गायक यथाशक्ति ध्रुवपद-गायन की कला को प्राप्त करने में लगे रहे और उहोंन्ने शिक्षा, साधना, सेवा और श्रम के द्वारा यत्किंचित् वास्तविक रूप में ध्रुवपद-विधा के उत्कृष्ट भारतीय रूप को प्राप्त किया, उन्होंने भी ध्रुवपद की वास्तविकता को जानकर कण्ठ से उसके शुद्ध एवं सही रूप को रीति से निकालकर अदा

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

करने में ध्रुवपदी को वीणा की साधना का आश्रय लेने की सम्मति देते हुए गायकों की आंखें खोली हैं। उदाहरणार्थ एक ध्रुवपद देखिए, जो रागरस खां, जो कि श्री मिश्री सिंह (नौबत खां) के मूल वंश में अद्वितीय संगीत-विद्वान् हो गये हैं, के द्वारा लिखित है—

सुर संगत मों लेत तान अनोखी गुरु नमत गावे, ज्यों वीणा कण्ठ धरे।

यह ध्रुवपद दरबारी कान्हरे की बड़ी ही बेजोड़ चीजों में से एक है। इस प्रकार एक ही नहीं, अनेक ध्रुवपदाचार्यों ने ध्रुवपद-गायन की प्रवीणता प्राप्त करने के लिए तथा उसके मर्म को ठीक ढंग से समझकर साधन एवं अभ्यास से कण्ठ द्वारा नाद की तत्व-विद्या की सूक्ष्मातीत ध्वनि को स्पष्ट रूप से गाकर दिखाने के लिए गायकों को वीणा की शिक्षा प्रदान करने एवं साधना के लिए बहुत उत्तम रीति के ध्रुवपदों में निर्देश दिये हैं। यह स्मरणीय है कि पुरातन काल में केवल ध्रुवपदादि प्रबंधों का गायन भारतीयों के सांस्कृतिक एवं शास्त्रीय संगीत का प्रधान गीत था।

तानसेन-वंश इसी कारण ध्रुवपद-विद्या में अपने प्रभुत्व की पताका सेनिया वंश के नाम पर फहराता रहा, क्योंकि तानसेन के मूल वंश के साथ मिश्रीसिंह (नौबत खां) जैसे तंत-विद्या के अद्वितीय आचार्य का नाम वीणा के सिद्ध-हस्त कलाकार के रूप में जुड़ा था। मिश्रीसिंह को तानसेन ने अपनी पुत्री ब्याही थी। आगे चलकर इन दोनों ने एक-दूसरे की कला को एकसाथ प्रेमपूर्वक बैठकर सीखा और गाया। फलस्वरूप वे उसकी मार्मिकता को जानकर प्रकट करने में पूर्णरूप से दक्ष हो गये थे। इसके बाद भी दोनों के वंशजों ने कंधे से कंधा मिला-कर दत्तचित्त हो साधना की। उस साधना का सार इन दोनों वंशजों के अंतःअनुभवों के उद्‌गार को साथ लेकर रचना-रूप में प्रत्यक्ष हुआ। नाद-विद्या की विशिष्ट क्रिया, परत्व, को जीवन प्रदान करने वाले प्रामाणिक शब्दों को वे सार में साधते रहे। तानसेन के वंश से उनके दौहित्र वंश ने ध्रुवपद सीखा और दौहित्र-वंशजों से तानसेन के मूल वंशजों ने वीणा एवं सुरसिंगार आदि वाद्यों की उत्तम शिक्षा प्राप्त की, जिसके फलस्वरूप संगीत की मार्मिक शास्त्र-विद्या के अनुसार ध्रुवपदों का निर्माण किया गया। बुध प्रवीण दूलह खां ने तो संगीत के एक ऐसे उत्तम शास्त्र का ध्रुवपदों में गायन सुलभ कर दिया, जिसमें सभी प्रकार की सुर-श्रुतियों का विवेचन किया गया है, साथ ही उसमें क्रियापरक ताल-विधा की शास्त्रीय विवेचना भी मिलती है। इसी प्रकार अन्तिम रचनाकारों में प्यार खां, जफर खां, बहादुर सेन, बाला सेन, साहब खां आदि श्रेष्ठ हैं। ध्रुवपद एवं वीणा के बादशाह दादा हैदर सेन जैसे लोगों ने संगीत-विद्या के शास्त्रीय स्वरूप को, जो वीणा की भी कलात्मक क्रियाओं से परिपूर्ण है, रचकर गायकों को शास्त्रीय विषय तथा वीणा दोनों की साधना का निर्देश किया है। गायन-विद्या

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

के स्वरूप को मूर्तिमान करने के लिए स्वरों की तारतम्यता का क्रियापरक होना वीणा की शिक्षा के विना कभी संभव नहीं। गत काल के ध्रुवपद-गायक जाकुरुद्दीन अलावंदा खां का नाम आलाप अंग में प्रख्यात है। सर्वप्रथम् इन दोनों ने अपने पिता बहराम खां से ही गायन सीखा था। बाद में जब बहराम खां ने रीवां, बीकानेर तथा अलवर में तीन बार दादा हैदरसेन एवं बहादुर सेन से संगीत-कला की शास्त्रीय क्रिया-गायन से प्रत्यक्ष करने में हार खायी तब श्री हैदरसेन से बहराम खां ने शिष्यत्व ग्रहण कर जयपुर में ग्यारह वर्ष तक ध्रुवपद एवं आलाप की अंत:भेदी प्रस्तार-क्रिया को सीखा और अपने उक्त दोनों बालकों को भी हैदरसेन का ही शार्गिद बनवाया। जाकुरुद्दीन ने तो खलीफा मियां निहालसेन से पृथक् रूप से पुनः शिष्य होकर सुरसिंगार का वादन भी सीखा और अलवर में रहकर प्यार खां के पुत्र काजिम अली खां की भी सेवा कर पांच वर्ष तक विशेष रूप से ध्रुवपद के आलाप एवं सुर-सिंगार की विशेष साधना-शिक्षा प्राप्त की तथा बाद में अपने भाई अलावन्दा खां को अपनी पूर्ण विद्या प्रदान की जिसके फलस्वरूप अलावंदा खां ने आलाप में सर्वोत्कृष्ट ख्याति प्राप्त की।

ध्रुवपद-गायकों में जिन ध्रुवपदियों की आलाप विषयक् अधिक चर्चा और ख्याति हुई उनमें सर्वश्रेष्ठ नाम जयपुर के मरहूम करामत खां का अग्रग्रण्य रहा है। जिन गुरुओं के द्वारा मुझे मेरे जीवन से पूर्व के भारतीय ध्रुवपद गायन-विधा के गुणियों की जीवनी का परिचय, इतिहास एवं ध्रुवपद वीणा की शिक्षा का ज्ञान प्राप्त हुआ, उनमें से एक करामत खां भी हैं। पूर्व का इतिहास इनके ही द्वारा क़थित संग्रहों में से है।

करामत खां जी के पास से सन् 1934 सें लेकर 1946 तक बहुत बार इस प्रकार की ऐतिहासिक जानकारी मुझे उनके मुख से सुनने को मिली, जिनमें से बहुतों को लेखबद्ध किया गया। करामत खां जी अपने विषय में कहा करते थे कि मैं पहिले बहुत ही खड़क गायकी गाता था। बाद में मैंने छोटी-सी नौकर जयपुर में आकर इसलिए की क्योंकि यहां तानसेन वंश के वास्तविक और सच्चे जानकार गायक-वादक थे। करामत खां ज़ी का कहना था, मैंने रज्जब अली, वासत अली जैसे बीनकार और खलीफा मियां निहालसेन जैसे सुरीले बीनकारों को 21 वर्ष तक कान खोलकर सुना है और ध्रुवपद कैसे पढ़ना चाहिए, उसे इन लोगों की संगत से सुधारा है। इसी प्रकार महमूद अली बीनकार के साथ रहकर चार वर्ष तक गले की बातों की सीखा और समझा। महमूद अली बीनकार जाति से कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे तथा जिला शाहजहांपुर के अन्तर्गत पुरायां नामक राज्य में महाराज फ़तेहसिंह के दरबार में बहुत समय तक रहे थे। वह फतेहसिंह के उस्ताद

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भी थे। फतेहसिंह महाराज की वीन मुझे इनाम में उनके पुत्र महाराज श्री अजय वर्मा ने प्रदान की थी। यहीं से मुझे करामत खां जी द्वारा कही गई महमूद अली खां वीनकार की महान् कला की प्रशंसा का प्रमाण कई व्यक्तियों से प्राप्त हुआ। महमूद अली खां के दो शिष्यों, सरजूदीन त्रिपाठी तथा रामदत्त पाठक से पांच-सात ध्रुवपद भी मुझे प्राप्त हुए। इनमें पाठक जी सांगीतिक ढंग के व्यक्ति थे। उन्हें इसी के द्वारा जीविका प्राप्त करने के कारण संगीत विषय का काफी अच्छा ज्ञान था। सांगीतिक-जनों की मनोवृत्ति के समान उनमें भी ध्रुवपद पर बहुत-कुछ द्रव्य लेने की कामना रहती थी। इस कारण द्रव्य के अभाव में मुझे महमूद अली वीनकार की अधिक चीजें प्राप्त नहीं हो सकीं। पाठक जी सन् 1937 में 80 वर्ष से कुछ अधिक हो गये थे और उनकी गृहस्थी का सम्पूर्ण भार केवल कन्याओं के होने से उन्हीं पर था। इसी कारण मैंने बाबा नरसिंह दास महाराज की आज्ञा को शिरोधार्य कर जो बना उससे उचित सेवा करके उनसे लगभग आठ चीजें ध्रुवपद और प्रबंध के रूप में प्राप्त कीं। इन चीजों में वीन की बहुत-सी गंभीर क्रियाओं को श्री रागरस खां ने तथा श्री मुम्मा खां ने ध्रुवपदों के रूप में बिठाया है। राग की रीति और शास्त्र की क्रिया वीणा के द्वारा प्रकट करके गायन के स्वरूप में बतायी गयी है। इससे राग की व्यवस्था गायक को पूर्ण रूप से ज्ञात होती है और राग रस की प्रधानता को भी प्राप्त करता है। पाठक जी से प्राप्त आठों ध्रुवपद और प्रबंधों के प्रायः सभी राग ज्ञातव्य हैं, यद्यपि उनके क्रम आज से 25-30 वर्ष पूर्व ध्रुवपद-गायकों के साथ ही समाप्त हो चुके हैं।

प्रस्तुत प्रसंग ऐतिहासिक प्रामाणिकता के निमित्त दिया गया है। एक बात और! सभी आधार-स्वरूप ग्रहण किए गए तथ्य मुझे जानकार विद्वानों द्वारा ज्ञात हुए हैं, अतः जो विश्वसनीय एवं सत्य के निकट जान पड़े केवल उन्हीं को इस पुस्तक में मैंने स्थान दिया है।

महमूद अली वीनकार प्रसिद्ध ध्रुवपदीय दौलत खां के संबंधी थे। दौलत खां एवं प्रसिद्ध ख्याल-गायक अल्लादिया खां भी कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे। महमूद अली खां ने तानसेन वंश के किसी विद्वान् का शिष्य होकर ध्रुवपद और वीणा की शिक्षा प्राप्त की और बाद में उन्हीं के जामाता होकर रहे। करामत खां के कथनानुसार, वे हैदरसेन जी के पुत्रों में से थे और अंजू खां के जमाता थे। अंजू खां के बारे में ऐसी किंवदंती सुनी गयी है कि अंजू खां बहुत गहरी सांस के आचार्य थे। वह किसी भी ध्रुवपद को संपूर्ण एक सांस में गाकर बताते थे। इसी प्रकार वह किसी भी राग का आलाप, वीणा को एक बार कंधे पर रखने बाद के बगैर सांस लिए, संपूर्ण

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

करके ही कंधे से नीचे रखते थे। वह अपने पिता हैदरसेन के ही शिष्य थे और बाद में रसवीन खां से वीणा की शिक्षा ली थी। एक ही पुत्री होने के बाद स्त्री से सम्पर्क तोड़कर उन्होंने ध्रुवपद की कठिन साधना की थी। महमूद अली खां के पिता राज्य के साधारण पंडित थे परंतु पुत्र को उन्होंने संगीत सिखलाना आरम्भ किया था। महमूद अली खां, अंजू खां के ही एकमात्र शिष्य थे। पिता का स्वर्गवास होनेपर महमूद अली को अंजू खां ने अपने घर रख लिया। लगभग 18 वर्ष के बाद अंजू खां भी दरवार में किसी वड़े ध्रुवपदिये को परास्त करते समय स्वर्गवासी हुए। अंजू खां से सम्पूर्ण भारतवर्ष के प्रायः सभी ध्रुवपदिये कुछ सुनने और प्रतिस्पर्धा करने महाराज रार्मासिह के दरबार में आया करते थे। भारत के प्रायः जितने भी वड़े-वड़े गायक तथा वीनकार आये, सभी को उन्होंने अपनी कला से परास्त किया। अंजू खां मात्र 52 वर्ष ही जीवित रहे, परन्तु इतने ही समय में इतनी कठिन साधना के कारण तानसेन-वंशजों और तानसेन के दौहित्र-वंशजों में कला-साधना का बहुत अधिक उत्कर्ष हुआ। भारत के अन्य स्थानों के गुणीजन उनसे मिलने आये और इसी कारण सभी प्रान्तों के गुणियों को जयपुर दरवार में अंजू खां से समागम प्राप्त हुआ।

सन् 1936 में गोरखपुर निवासी श्यामदास गौड़ नामक एक पुराने संगीतज्ञ, जो हारमोनिम-वादकों में सुरीले और अग्रण्य भैया श्याम लाल खत्री के शिष्य थे, के पास सुदर्शनाचार्य कृत एक पुस्तक पढ़ने को मिली। उन्होंने मुझे तानसेन-वंशज नजीर सेन का शिष्य जानकर तानसेन-वंशजों की जीवनी से संबंधित वह पुस्तक पढ़ने के लिए दी थी। उस पुस्तक में श्री अंजू खां के बारे में आश्चर्यजनक बात पढ़ने को मिली—पुस्तक में वड़े गौरव के साथ लिखा गया है कि 'अंजू खां ने समग्र ध्रुवपद को एक ही सांस में गायन करने की कठिन साधना की थी। इस कारण उनकी छाती से मुख के द्वारा कफ के साथ खून आने लगा था; फलतः वह गाते-गाते ही मृत्यु को प्राप्त हुए।' यदि इन्हें ध्रुवपद विधा की कला-क्रिया का एक प्रत्यक्ष गंधर्व कहा जाये, तो अतिशयोक्ति न होगी। उनके बाद उनकी पत्नी और परिवार का भार महमूद अली खां ने श्रद्धापूर्वक अपने ऊपर ले लिया होगा, ऐसा मेरा अनुमार है। उनकी कन्या को बाद में महमूद अली खां ने पत्नी के रूप में ग्रहण कर लिया होगा—क्योंकि पाठक जी प्रायः कहा करते थे कि महमूद अली खां अपनी उस सास-मां को लेकर इधर-उधर कई दरबारों में गए थे जहां वृद्धा का बहुत सत्कार हुआ करता था। पाठक जी ने स्वयं भी उन्हें देखा था। जो भी हो, ईश्वर जाने; लेकिन महमूद अली बेला, प्रतापगढ़ में बहुत समय

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तक रहे और राजा के द्वारा अपने शरीर का अन्तिम दाह-संस्कार प्रयाग में कराया था। अतः स्पष्ट है कि तानसेन के समान महमूद अली खां भी जीवन-पर्यन्त ब्राह्मण ही रहे। प्रस्तुत प्रसंग से यह स्पष्ट हो जाता है कि महमूद अली खां ने ध्रुवपद-गायकी की कठोरतम साधना की थी जिसका पर्याप्त प्रभाव वीणाकारों की रचना तथा गायकी पर पड़ा। उनके द्वारा रची गई जो चीजें मुझे मिली हैं उनसे उनकी वंश-विशेषता का स्पष्ट ज्ञान हो जाता है।

महमूद अली खां की इस सम्पूर्ण जीवनी में एक बात महत्व की और भी है। वह यह, कि महमूद अली खां ने यावत्-जीवन चालीस वर्ष तक कुल मिलाकर शिक्षा-साधना की। यह बात मुझे कालपी-घराने के ध्रुवपदिये एवं स्वर-बहार के बेजोड़ वादक उस्ताद अब्दुल गनी साहब ने बतलायी। अब्दुल गनी साहब के शिष्य युसुफ अली खां लखनऊवाले एक विकट सितारिये हैं। इनकी प्राचीन गतों की साधना एवं संग्रह पर राष्ट्रपति पुरस्कार भी दिया जा चुका है। यह पंक्तियां लिखने के समय तक यूसुफ अली खां 85 वर्ष के हो चुके थे। सन् 1936 से लेकर सन् 1943 तक कई बार इनसे हमारी सांगीतिक चर्चा हुई। इनके उस्ताद अब्दुल गनी साहब से रियासत दियरा, प्रतापगढ़ एवं खजुरहट में कई बार मुझे पुरानी गतों को सीखने, समझने तथा उत्तम कोटि के ध्रुवपद और पुराने गुणियों के विषय में ऐतिहासिक, वास्तविक एवं सत्य घटनाओं का आकलन करने का अवसर प्राप्त हुआ। यहां पर मैने 'वास्तविक घटना' और 'सत्य घटना' शब्दों का प्रयोग किया हैं, अतः जिज्ञासुओं को इसकी पूर्व-कथा के अनुसार तर्क-युक्त शंका होना स्वाभाविक है। व्यावसायी संगीतज्ञ प्रायः अपने-अपने उस्तादों और गुरु-घरानों या किसी उस्ताद की घटना को जोड़ते रहते हैं। किन्तु उस्ताद अब्दुल गनी साहब एक अपवाद रहे हैं। साथ ही एक और भी प्रामाणिक व्यक्ति उपस्थित कर रहा हूं, जो स्वयं श्री सुखसेन जी के सम्बंधियों में से हैं। यह व्यक्ति स्वयं शरीर से अल्मु खां के भानजे लगते थे और मूल तानसेन-वंश के ही थे। इनका नाम श्री नजीर सेन है।

मेरे प्रथम गुरु ध्रुवपद के आचार्य श्री बालमधुसूदनाचार्य आयंगार तथा श्री नजीरसेन दोनों ही ने सर्वप्रथम् दादा हैदरसेन तथा मम्मु खां से और बाद में अल्मु खां से ध्रुवपद विद्या को एक साथ सीखा था। इस कारण स्वामी आयंगार के साथ रहते हुए मुझे सन् 1933 में नजीर सेन के पास फतेहपुर सीकरी ध्रुवपद-गायन सीखने के लिए भेजा गया था। ध्रुवपदों के अतिरिक्त इनके द्वारा तानसेन-वंशजों की जीवनी तथा उनकी कला का प्रदर्शन जिस रूप में हुआ करता था, उसकी भी बड़े अच्छे ढंग से सन् 1937 तक कंठ द्वारा साधना करना सिखाया और बताया गया। इनके नाती ने बहुत-सी बातें क्रमशः एक कापी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

में लिखकर मुझे दीं। कारण यह था कि मुझे ध्रुवपद और वीणा के अभ्यास-रत रहने के कारण अवकाश नहीं मिलता था।

नजीरसेन के कथनानुसार, 'महमूद अली खां, आलम खां के शागिर्द थे और तानसेन-वंशजों में हिलमिल जाने के कारण मुसलमान हो गये थे। आलमसेन के कोई संतान न होने के कारण यह उनके पुत्र के समान थे। अतः इन्होंने उनकी पत्नी को माता मानकर यावज्जीवन उनकी अच्छी सेवा की। इसी हेतु महमूद अली खां का विवाह तानसेन-वंशीय कन्या से हुआ था। सबने मिलकर 40 वर्ष तक महमूद अली खां को विद्या प्रदान की थी। इस कथा से पाठक जी भी सहमत थे।

महमूद अली खां के इस इतिहास, अथवा इस लेख के पूर्व या पश्चात् का जो इतिहास है उसे इसलिए देना चाहता हूं कि साधना और कला की दृष्टि से इस विद्या की जिज्ञासा हेतु विचार व्यक्त किया जाय, ताकि पाठकों को इन बातों का यथार्थ ज्ञान और मर्म प्राप्त हो सके।

उपर्युक्त विवरण के अतिरिक्त इस महान् विद्वान् के विषय में भिन्न-भिन्न प्रकार की घटनाएं और जीवनी के अंश उत्तर प्रदेश में मिले हैं। किन्तु विश्वास-पूर्ण दृष्टि से नजीरसेन जी की बातें अत्यधिक प्रामाणिक प्रतीत होती हैं क्योंकि फतेह सिंह महाराज का जन्म गदर के समय किसी युद्ध के जीतने पर हुआ था, इसीलिए इनके पिता ने इनका नाम फतेहसिंह रखा था। फतेहसिंह की युवावस्था में यह 65 वर्ष की आयु पाकर स्वर्गवासी हुए। दूसरे नजीरसेन जी ने अपनी 60 वर्ष की अवस्था तक ही उनका संगीत सुना था। नजीरसेन जी 111 वर्ष की उम्र में सन् 1937 में बीमार पड़े, तदनन्तर उनका शरीरान्त हुआ। तीसरे, अब्दुलगनी साहब ने सन् 1947 में इस विषय पर विचार व्यक्त किये थे, उस समय वे 80 की उम्र पार कर चुके थे। उन्होंने रियासत प्रतापगढ़ में महमूद अली खां की बीन सुनी थी तथा अपने पिता की आज्ञा से कुछ सीखा भी था। उनके कथनानुसार, उस समय उनके रेख नहीं आयी थी, जब कि महमूद अली खां ने संसार का त्याग कर दिया था। इस प्रकार यह आलमसेन के ही आश्रित सिद्ध होते हैं, अज्जु खां के नहीं। इस तरह वीणा के द्वारा गायन को सुधारने की मूल भूमिका में आये हुए गुणियों में से महमूद अली खां, अलाबन्दे खां, जाकरुद्दीन तक का जीवन-इतिहास कुछ संक्षिप्त बातों को लेकर मैंने पाठकों के लाभ के निमित्त यहां प्रस्तुत किया है।

करामत खां मेरे प्रौढ़ होने तक जीवित रहे। राजा रामसिंह के समय में यह जयपुर भी आये थे। इनके लिए भी संगीत-क्षेत्र में कला तथा अवस्था-विषयक् बहुत-सी काल्पनिक बातें फैलायी गयी हैं, जो युक्तियुक्त नहीं प्रतीत होतीं। वस्तुतः यह

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

बड़े सरल और सीधे व्यक्ति थे किन्तु संगीत-जगत् में बड़े टेढ़े और हठीले विचार के गायक थे। इस संदर्भ में जियाउद्दीन द्वारा दिया गया एक उदाहरण प्रस्तुत है— इन्होंने अपने जीवनपर्यन्त किसी भी गायक को नहीं सुना। अलावन्दा खां इनको गाना सुनाने बहुत बार आये किन्तु हर बार थोड़ी-थोड़ी देर सुनने के बाद उन्होंने कह दिया, 'भाई, मैं तुम्हारा रियाज नहीं, गाना सुनना चाहता हूँ। इनकी व्यक्तिगत बातों को लेकर अलावन्दा खां अलवर में 150 रुपये की नौकरी में वर्षों पड़े रहे। वहां उनका लक्ष्य सांवल खां और मुसर्रफ खां बीनकार की संगति में रहकर गाने को सुधारना था। किन्तु 18 वर्ष नौकरी करने के बाद भी जब करामत खां को दसवीं बार गाकर सुनाया तो फिर उन्होंने वही शब्द कहे जो हर बार पहले कहे थे। इस पर अलावन्दा खां बहुत बिगड़ गये और यह कहते हुए मारने को खड़े हो गये कि 'क्या गाना तुम्हीं तक है और आलाप करना तुम्हीं जानते हो ?' इस पर करामत खां ने कहा, 'भाई, लड़ने और मारने से तुम गाने में मुझे नहीं पा सकते। अगर तुम्हें कुछ समझना है तो एक ही बात मुझसे ले जाओ। आलाप को आलाप तक ही गाना चाहिए। उसमें विलाप नहीं करना चाहिए। तुम्हारा गणित द्वारा स्वर-प्रस्तार जिसे तुम बीन का अंग समझकर गाते हो वह राग को उलीचना है, गाना नहीं। इससे राग की सच्ची तानें उड़ाकर केवल सुरों के पटाव, जोड़ और उनके मिलान का गुणा-भाग ही होता है। जिन बीनकारों को सुनकर तुम अपने गान को बढ़ा रहे हो, वे लोग प्रस्तार बतला रहे हैं, जो बीन की केवल स्वर-साधना मात्र है। राग की निश्चित तानें, जो श्रुतियों के मिलान से अपने अंग तथा स्वरूप, भाव और मर्म को बतानेवाली हैं, उन्हीं में राग का मूल अंतर्भेदी अंग निहित है उसी को समझना, सीखना और अभ्यास कर उसके रस को उसी सीमा तक पहुँचाकर दिखलाना ही गाना कहलाता है।' इसी प्रकार वे कहते थे, 'आलाप तो फिर भी ठीक है परन्तु ध्रुवपद को सही-सही गा देना बड़े ही समझदार और विद्वान् गायक का काम है।'

एतदर्थ, यह विवेचन ध्रुवपद-गायन के लिए केवल योग्य तत्वों के सन्दर्भ में प्रस्तुत किया गया है, जिसमें इसके कर्तव्यशील गुणियों की जीवनी, उनकी सम्मति एवं सिद्धान्त बताने के लिए उदाहरण सहित दी गयी हैं।

गायन की स्वर-प्रक्रिया में कलात्मक भाषा से पोषित जो मींड, सूत, खैंच, गमक, तान, लपेट, धमक, छूट, घर्षण-अघर्षण, घोर, उद्वाहित, सम्भृत, अनुप्रावल्य इत्यादि भेद हैं, वे कंठ की अपेक्षा वीणा में बहुत स्पष्ट रूप से उसके क्रिया-नेत्रों के आगे आते हैं। प्रश्न उठता है, श्रोतव्य वस्तु के सम्बंध में श्रवण के अतिरिक्त नेत्र को महत्ता किस प्रकार दी जा सकती है ? किन्तु नेत्र द्वारा सुनने की क्रिया को हाथ और अंगुलियों की सहायता से प्रत्यक्ष होने वाले

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

नाद को दृष्टव्य की भी प्रधानता प्राप्त हो जाती है। इस कारण वीणा के द्वारा दृष्टव्य नाद सिद्ध गति है। यदि कोई गायक अपने विद्यार्थी को किसी स्वर की छूट सिखाते समय ऐसा कहे कि देखो यह मध्य सप्तक के गांधार की छूट तार षड्ज के गांधार से लौटी और इस क्रिया को वह गाकर दिखाते हुए समाप्त करे, तो यहां पर 'देखो शब्द की सार्थकता व शब्द-प्रयोग उपयुक्त नहीं माना जायेगा। कारण, 'देखो' की जगह 'सुनो' ही सिद्ध होता है। इसके स्थान पर कंठ की अपेक्षा वीणा में यह स्वर-ध्वनि बहुत स्पष्ट रूप से उसके नेत्रों के सामने आती है और कंठ की ध्वनि के समान कान को भी सुनने को मिलता है। इसके अतिरिक्त वीणा की एक विशेषता और है, जिसे अकाट्य सत्य कहा जा सकता है, कि कान सुनता है और अंगुलियां उस ध्वनि को व्यक्त करती है। आंखें उसको सामने करती हुई देखती हैं तथा मस्तिष्क को उसकी समस्त कला-क्रिया की विभिन्न प्रक्रिया को विचारने का पूरा अनुभव सरलतापूर्वक स्वतंत्र रूप से प्राप्त होता है, जबकि कंठ द्वारा उत्पन्न नाद-ध्वनि सांगीतिक कला-प्रभेद की विभिन्न गतियों की संज्ञा को केवल अनुमान के विश्वास पर अपने को समझा लेने में ही संतोष कर लेती है कि यह सूत हुई, यह मींड हुई इत्यादि।

इसके अलावा एक अन्य दृष्टिकोण को लेकर वीणा का अध्ययन परमावश्यक है। वह है मेरुखंड, जिसके द्वारा प्रायः वीणा से अनभिज्ञ गायक आलाप का अंग प्रस्तुत करते हैं। यह बात शास्त्र, तर्क एवं बुद्धि से निर्धारित है कि कंठ के तीन नाद-स्थान होते हैं जो स्वर-प्रवाह करते हैं। उनके लिए संगीत-शास्त्र में जो भी नाम वर्णित हैं उनमें से किसी को भी किसी ग्रन्थकार ने आज तक 'मेरु' नाम की कोई संज्ञा नहीं दी है, न उसकी कोई क्रिया कंठ द्वारा ही बतायी गयी है। अतः यह बात निराधार और स्वकल्प है। आज तक किसी शास्त्रकार ने कंठ द्वारा नाद की विभक्ति लिखने में इस प्रकार की भारी भूल नहीं की है। अतएव मेरु-प्रस्तार मात्र वीणा की ही मेरु-क्रिया संचार से सम्बन्धित है। वीणा की ही मेरु में क्रिया-संचार के अन्तर्गत स्वराभिवर्णों की प्रस्तार और खंड-प्रस्तार के स्वरों की क्रिया का प्रत्यक्षीकरण होता है। चित्रा, विचित्रा वर्ण, भरणा, स्वाभिकल्पानिरीहिता, घोषिता, अघोषिता, बाजपक्षा, अभिजिता, उद्वाहिता, प्रसरा, मेकध्वन्या, गम्यवाहिनी, एतदगम्या, अभिरुद्गता, कोकिला, प्रवाहिका, जलधरा, विद्युत्घना, तड़िता, दामिनीसौरभ इत्यादि जो अनेकानेक कलाएँ स्वरों के नष्टोदृष्टि भेद में मेरु से प्रसारित होती हैं, वीणा के अतिरिक्त अन्य प्रकार के किन्हीं भी तारयंत्रों पर प्रयुक्त नहीं की गयी हैं, न उनका सफल प्रयोग हो सकता है। कारण, कि इसमें अनेक स्वरों के आघात और उनका सम्मिश्रण अनेक स्वरों में उपोहित है। कंठ से हम किसी भी प्रकार की एक ही

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ध्वनि निकाल सकते हैं और वह नाद एक होगा। साथ ही मेरु न होने से कंठ स्वतंत्र है, हर प्रकार से नाद को प्रश्रय देने में अबाध गति रखता है। ऐसी स्थिति में मेरु की संज्ञा किस स्थान को दी जाय, यह विवादास्पद हो जाएगा। इसी कारण अनुभव-गम्य क्रिया-सिद्ध परंपरागत वीणा-प्रणीत जनों एवं शास्त्रकारों के अकाट्य सिद्धान्तों की पुष्टि का लोहा मानना पड़ता है।

अस्तु, आलाप-खण्ड के मेरु का प्रस्तार किसी एक अंग को कदाच कंठ द्वारा प्रत्यक्ष कर दिखाने के लिए यदि गायक संभव बनाना चाहता है, तो सम्भ्रात विचारों के अनुसार वीणा की शिक्षा परमावश्यक एवं अनिवार्य है; अन्यथा मेरु-खंड का आलाप शास्त्रोक्त नाम-क्रिया के दर्शन में तो अप्रामाणिक और अनिश्चित होगा, साथ ही वह विदग्ध और दग्ध स्वरों का प्रयोग होकर शास्त्र की मर्यादा को प्रमाद और स्वकल्प की संज्ञा में रख कर अमर्यादित और अनियमित गायन का अयोग्य रूप प्रस्तुत करेगा। वस्तुतः इस मेरखंड के विषय में वर्तमान काल की गायन-प्रणाली के गायक उपर्युक्त नाम-संज्ञा और क्रिया से अपरिचित हैं, फलतः गायन भी उसके अनुकूल नहीं हो सकता। विगत काल के जो गायक इस मार्ग में अनुगत हुए हैं उन्होंने तद्नुकूल उपयोगी क्रियाओं की शिक्षा के साथ-साथ वीणा द्वारा कंठ को भी साधा था और गुरु-परंपरागत एवं वंशानुगत सांगीतिक थे। इस कारण उनकी गायकी रीति के अनुसार थी, अन्यथा मेरुखंड के नियमानुसार आलाप-गान पूर्वलिखित क्रियाओं से संज्ञाहीन लोगों के द्वारा कदापि सही नहीं हो सकता।

विशिष्ट योग्यता के लिए वीणा-साधना की जो भारी आवश्यकता है, वह है—श्रुति की गुरुता। कई गायक गाते समय देखे गये हैं कि अपने गायन में किसी भी राग के किसी स्वर का बराबर नीचे-नीचे अथवा ऊपर-ऊपर कुछ विकृत प्रयोग करते हैं और उसे कड़े विश्वास से श्रुति मानकर उसकी चर्चा करते हैं। बातों द्वारा ऐसी श्रुति-विधा को मात्र कलंकित करना है। कला-कौशल और कला-पांडित्य कला-मर्म के अनुसार ही होना चाहिए। तभी वह सार्थक होगा। मैंने अपने गुरुवर्य मूल तानसेन वंश-परंपरा के खलीफा श्री निहाल सेन जी के पुत्र लालसेन नवाब सेन वीणकार से इस विषय में पूछा तो उन्होंने यही कहा कि "मेरी बुद्धि में तो यह आता है कि जिसने संगीत के क्रिया-सिद्ध शास्त्रकारों के वाक्यों को विचारपूर्वक किसी योग्य गुरु से अध्ययन नहीं किया है, वास्तव में ऐसे ही लोग इस प्रकार की क्रिया को भ्रम से श्रुति कहते व मानते हैं। ज्ञानवान् और विचार-शील तथा नाद-विधा के मर्मज्ञ ऐसी क्रिया को उनके सही नामों के साथ इस क्रिया का प्रदर्शन करते हैं। पुनश्च, श्रुति-शब्दता अपनी नामवाची संज्ञा से स्पष्ट है और न माननेवालों के लिए ही शास्त्रकारों ने 'श्रूयते इति श्रुतिः' जैसा वाक्य

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

लिखकर भ्रान्ति को नष्ट कर दिया है। अतः मेरे विचार से श्रुति-विषयक् तर्क विद्या की यह विशेषता वीणा से ही सिद्ध है। इसलिए श्रुति-विषयक् क्रियावाची संज्ञा को रीति के अनुसार जानने के लिए वीणा की शिक्षा आवश्यक है तथा इस विषय के संस्कृत के संगीत-ग्रंथों की शिक्षा-साधना बिना श्रुति-विद्या का पूर्ण रूप से अनुभव-सिद्ध और प्रत्यक्षीकरण की क्रिया का ज्ञान केवल कंठ-ध्वनि-साधक को कदापि नहीं हो सकता। इसलिए वीणा की शिक्षा-साधना वास्तविक ध्रुवपद-गायक के लिए अनिवार्य और आवश्यक है।" ऐसा श्री लालसेन-नवाबसेन का मत था। इन दोनों भाइयों को ध्रुवपद की शिक्षा दादा हैदरबख्श जी से आरंभ करायी गयी थी, जिसे बाद में अल्मु खां और सलामत खां जी ने पूरा कराया था। सेनियों की हवेली में इनके अतिरिक्त मैंने कायमसेन जी को भी देखा था और उन्होंने बहुत प्रेम से मुझे एक पुस्तक और दो चित्र तथा पूर्वजों के विषय में बहुत-सी बातों का ज्ञान जयपुर में उनके घर पर मेरी शिक्षा समाप्त होने के बाद प्रदान किया।

किसी भी विवेचन को मात्र अपने आधार पर देने में मैं असमर्थ हूँ, तथापि जिन महान् साधकों ने इस नाद-विद्या के अंग-प्रत्यंग को भारतीय आचार्यों और इस नाद-विद्या के सिद्धान्तों को उनके मूल स्वरूप के अनुसार ही सुरक्षित रखा, उन्हें ध्यान में रखना चाहिए। इसमें तानसेन-वंशजों का सबसे बड़ा योगदान है। इस कारण उनकी मार्मिक बातों को मैंने भी आधार माना है। प्रस्तुत प्रसंग में सेनियों की हवेली का सन्दर्भ आया है। यह हवेली अत्यधिक पुरानी है। इस हवेली में किस समय से और किन-किन लोगों के द्वारा संगीत-विद्या के मर्म की साधना की गई, यह भी एक संगीतोपयोगी, बहुत मार्मिक और तथ्यपूर्ण चर्चा है।

संगीत के मर्मज्ञ पंडितजनों ने वीणा को नाद-विद्या का नेत्र कहा है। ध्रुवपद में गाये जानेवाले स्वरों से निर्मित शब्द अक्षरों के पारस्परिक सम्बन्धों को ठीक-ठीक रीति से जानने और गाने के लिए वीणा की साधना बहुत ही श्रेयस्कर है। मैंने तो पुराने गुणियों को यह कहते सुना है, कि 'अरे भाई, गला तो अच्छा होता है, बेअंदाज-मन मनमानी करता है। बादशाह है—गला। पर, जिसे स्वर-विद्या के स्वरूप को ज्ञान-चक्षु और चर्म-चक्षु दोनों ही से देखना हो वह वीणा सीखकर गले में दो आंखें लगा ले। नहीं तो अंधी गायकी अंधी ही रहेगी।' इस प्रकार की सांगीतिक लोगों से चर्चा सत्संग एवं शिक्षा के समय मैंने सुनी। वीणा के बिना न तो कोई गायन, गायन है और न किसी की कोई मर्यादा है; न सीमा है, न उसकी अपनी कोई सांस्कृतिक विशेषता है।

कला के विषय में थोड़ा-बहुत सीख-साखकर प्रायः लोगों ने अपनी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

महत्ता उस क्षेत्र में अमिट बनाए रखने के लिए पुस्तकों में अपने विचार प्रकट किये हैं। यहां पर हमें ध्रुवपद और उसके कर्त्ताओं के अनुभवों की क्रियात्मक समीक्षा करना ही अभीष्ट है। यह ठीक है कि मेरा आग्रह तानसेन-वंशजों के पक्ष में विशेष है। किन्तु वर्तमान काल में अथवा इसके पहले भी पूरब के मलिक घराने थे, जिन्हें वास्तव में मालवी कहना चाहिए और जो खिलजी के समय में मालवा प्रान्त के भेलसा, उज्जैन एवं धार से मुसलमान होने से बचने के लिए भागे हुए ब्राह्मण लोग हैं। उनके यहां की गीत-परंपरा राग-स्वरावलियों सहित तानसेन-वंश व स्वामी हरिदास से बहुत पूर्व काल की अवश्य मिलती है तथा साहित्य की दृष्टि से भी वह अति उत्तम है। संगीत के साधकों में सदा से तानसेन वंश श्रेष्ठ रहा है।

वीणादि वाद्यों की शिशिष्ट कला एवं तार-ध्वनि के सार अंशों से अनभिज्ञ केवल कंठ के द्वारा स्वरों के अभ्यास पर समस्त नाद-विद्या को इतिवृक्ष मानने वाले लोग कई बार ऐसा वितर्क करते हैं कि कंठ द्वारा स्वर का उच्चार ईश्वरीय नाद है जो ब्रह्म है तथा वाद्यों को मनुष्य ने अपनी बुद्धि से बनाया है। इस कथन का तात्पर्य यह है कि कंठ का स्वर 'स्वर ब्रह्म' और वाद्य का स्वर कृत्रिम अर्थात् नाद-ब्रह्म नहीं है। यह तर्क सापेक्ष होते हुए भी सृष्टिवाची है। सृष्टि के विकासवाद का तर्क इसे बहुत ही ठोस ढंग से काट सकता है। प्रकृति में पहले पेड़-पौधे उत्पन्न हुए। तदुपरांत जंगली जीव, जंतु, अंडज, पिंडज और उद्भिज। तब अंडज तो प्रथम ही हुआ। मनुष्य जाति पिंडज की संज्ञा में है और मेरे विचार से कल्पना में प्रकृति-जगत सृष्टि की अंतिम कल्पना है। तब जंगली पेड़-पौधों में बांस के जंगलों में जो छिद्र कीट व भृंग ने किये होंगे, प्रकृति के वायु-संचारों के प्रवाह से उन छिद्रों में से जो स्वर एक सीटी की तरह सुनायी पड़े होंगे उन्हीं को सुनकर मनुष्य ने कभी स्वर की कल्पना की होगी और बांस में प्रथम कीट-भृंगों के द्वारा निर्मित छिद्रों को देख अपनी बुद्धि से पुनः छिद्र बना-बनाकर फूंक से वायु देकर स्वर सुने होंगे। अलगोजा व वंशी की उत्पत्ति इसी प्रकार मानी जाती है। वैसे भी वेद की सृष्टि में तीन ही स्वर प्रधान हैं, तीन ही ग्राम भी हैं। बाद में वेणु या वीणा के द्वारा नाद का स्पष्टीकरण किया गया होगा तथा आगे चलकर उसकी अनुपस्थिति का अनुभव एवं विचार करके स्वयं में स्वरों को स्थिर करने की साधना संभवतः की गयी हो—यह एक तर्क मात्र है। किन्तु संगीत-शास्त्रज्ञों ने वीणा को सदा से महत्व दिया है और हमारे सभी आर्य देवी-देवताओं ने भी अपने-अपने हाथों में कोई-न-कोई वाद्य ले रखा है, जिनमें वीणा तो संगीत-विद्या की साक्षात् मूर्ति है। वीणा तो मां सरस्वती के कंधे और जंघा पर विराजते हुए उनके सारे शरीर को अपने से आच्छादित रखती है। अतः वीणा और ध्रुवपद शरीर तथा प्राण के समान मान

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कर विद्यार्थियों को, ध्रुवपद के गायक, साधक और अपने को इस विद्या का अधिकारी माननेवालों को वीणा की साधना अवश्य करनी चाहिए।

एक बात और, वीणा की साधना से ध्रुवपदज्ञों को एक और महत्वपूर्ण लाभ होता है। इस प्रकार की राग-रागिनियों के आलापों में प्रत्येक राग-रागिनी के ग्रह, अंश, न्यास आदि क्रम; स्वर-श्रुतियों के प्रयोग तथा उनके संयोग-नियोग, जो शास्त्रकारों ने वर्णन किये हैं, को रीत्यानुसार गायक यथावत् सदा कंठ से ध्यानपूर्वक पूरा नहीं कर पाते। साथ ही राग में रस-भाव की अपूर्णता न होने पाये, इस पर भी वे ध्यान नहीं देते। किन्तु इन सभी बातों की रीति और मर्यादा को, उपर्युक्त शास्त्रीयता को, सरस वीणा चुनौती देती है। वीणा वस्तुतः राग-विद्या की मर्यादा को इस सीमा में लाकर रस-भाव से प्लावित करती है कि शास्त्र भी इसके आगे नत हो जाता है। अतः इस बात का यथोचित ज्ञान होने से बड़े विश्वास साथ सुगमतापूर्वक राग-रागिनियों में शास्त्र-संगत रहते हुए रस-भाव को गायन में दर्शाने हेतु बड़ी सहायता मिलती है। इस दृष्टिकोण से भी ध्रुवपद की गायकी के लिए वीणा की उत्तम योग्यता प्रमाणित होती है।

इस प्रकार यहां पर मैंने वीणा को लेकर वृहद् भूमिका को समाप्त किया है। फिर भी वीणा के स्वर-स्थापना-भेद, श्रुति-भेद इत्यादि विषयों को मैने नहीं लिया है। इसके दो कारण हैं—एक तो यह, कि वीणा ध्रुवपद से भी कठिन क्रिया-भेदों को रखती है। साथ ही उसके वादन-भेद बहुत हैं जिनकी विवेचना करने में सर्वप्रथम् तो ध्रुवपद-समीक्षा का विषयांतर हो जाता है; दूसरे, क्रियास्पद बातों की चर्चा में विस्तार भी एक वृहदाकार रूप पकड़ने लगता है। अतः विहंगम दृष्टि से मैंने वीणाकारों की चर्चा केवल ध्रुवपद-साधना के मार्ग-प्रदर्शन के निमित्त ही की है।

वीणा के विषय की विवेचना उनके साधकों के साथ देने से पाठकों को विशेष लाभ होता है, ऐसी मेरी धारणा है; क्योंकि किसी भी वस्तु की साधना का पथ उसके साधक के जीवन से बड़ी सुगमतापूर्वक जाना जा सकता है जिसमें अनेक भेद-प्रभेद जीवन-चर्या के साथ सुलझे हुए रूप में मिल जाते हैं। ऐसा वाक्य गुरुओं से मैंने सुना है और इसी को इतिहास भी कहते हैं।

ईश्वरपुर, गया प्रान्त के निवासी गणेश पाठक वीणाकार बहुत बड़े साधकों में से थे। सुना है, एक बार काशी-नरेश ईश्वरी प्रसाद सिंह के आगे इन्होंने वीणा बजाकर गंगा जी की धारा को स्तब्ध कर दिया था। यह ध्रुवपद के भी महान् विद्वान् थे। इनकी थोड़ी-सी वीणावादन की प्रणाली इनके एक शिष्य गायक के द्वारा मुझे प्राप्त हुई। ध्रुवपद की साधना में स्वर के समान ताल की साधना का अध्ययन भी बहुत लाभदायक है। श्री गणेश पाठक के शब्दों में 'तालहीन

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

गायक को लंगड़ा कहते हैं।' प्रयाग-निवासी वृद्ध गुणी इमिलियादीन तिवारी पाठक जी के छोटे शिष्य थे। इन्हीं से इस महान् वीणाकार के विषय में बहुत-सी बातें प्राप्त हुयी हैं।

यह सत्य है कि गायन में 'ताल' एक ऐसा विभाग है, जिससे प्रायः गायक डरते रहते हैं। रामपुर के नवाब मरहूम हामिद अली खां के गुरू वजीर खां वीणाकार ताल को 'काल' कहा करते थे। मृदंग की गर्जना में छंद-प्रवन्ध धारणा से च्युत न हो जाय ऐसी सांकेतिक बातों की चेतावनी अन्य संगीत-शास्त्रकारों ने भी दी है जिनमें 'संगीत-रत्नाकर' सर्वमत से प्रधान और संगीत-शास्त्र विषयक् विवेचनाओं का विस्तृत एवं सर्वोपरि ग्राह्य शिरोमणि ग्रन्थ है।

ध्रुवपद-प्रणाली के गायक को मृदंग-विषयक् ताल, काल, क्रिया, अंग, क्षेत्र, वोल, मात्रा और परन की भी शिक्षा दी जाती थी और इस शिक्षा को ग्रहण करना आवश्यक भी है। कारण यह है कि उसके बिना ताल की मार्मिकता को क्रिया-रूप से समझना सम्भव नहीं है। यहां पर वर्तमान काल के गायकों की बुद्धि में आये हुए ताल-विषयक् लय की विशेषता का विशेषज्ञ होने का एक झूठा उत्तर दर्प में देता हूं। गायक कहते हैं कि कोई भी गायक चाहे तो सम न दे। किन्तु यह कोई कला न हुई। साथ ही दूसरा उत्तर है कि गायक कहते हैं कि आड़, दुगुन, चौगुन, निकास, मुख ये सब बातें हमारे हाथ में होती हैं। ठीक है, गत शताब्दी में ऐसी क्रियाएं ध्रुवपद में सदा वर्जित और निषिद्ध थीं। धमार में ये क्रियाएं धमार की अपनी स्वर-शब्दावली तथा राग, शब्द, अनुप्रास, गीत के छंद तथा भाव और भाषा को विचारकर इस प्रकार की जाती थीं जिससे उपर्युक्त किसी संज्ञा की हानि न हो। किन्तु गत पचास वर्षों से प्रायः इस मार्मिकता से अनभिज्ञ गायक ध्रुवपद और धमार सभी में एक-समान गायकी प्रस्तुत करने लगे और धीरे-धीरे यह ताल को क्या, मात्रा से भी परे लय को छोड़कर स्वच्छंद गीत हो गया। इस प्रकार की ताल-विषयक् अवहेलना का सारा दोष समाज में ध्रुवपद-धमार के गायकों द्वारा संगीत-शास्त्र की मर्यादा के विरुद्ध गायन करने में अपयश का भागी बना। वर्तमान से कुछ ही पहले के गायकों ने तो मुंह और निकास को हास-परिहास की सीमा तक पहुंचा दिया। उनकी जैसी इच्छा हुई, वहीं से उन्होंने ध्रुवपद व धमार की कोई भी उठान उठा ली और किसी भी प्रकार की तीहा अथवा सम का मुख देकर समाप्त कर दिया। इस प्रकार की क्रिया करने वाले गायक संगीत-कला से अनभिज्ञ श्रोताओं की दृष्टि में बड़े लयकार और तालज्ञ भी कहलाते हैं। ध्यान देने की बात है, शास्त्र ऐसी किसी भी क्रिया की अनुमति नहीं देता। यदि आविष्कार नवीन है, तो भी वह शास्त्र के विप-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

रीत है, अतः इसे अशास्त्रीय गायन भी कहना उचित है। क्या गीत के छंद, राग, स्वरों के स्वरावर्त्त अपने क्रम से विरुद्ध किये गये लय, स्वर से भ्रष्ट नहीं होते ? क्या गायक के मुख से जहां सम निकल पड़े, वहीं सम का न्यास हो सकता है ? क्या ताल-विद्या का कला-कौशल उपस्थित करनेवाली वे परनें जिनमें एक मात्रा के एक अक्षर 'दीं' को तीन मात्रा-काल, अथवा 'न' अक्षर अर्द्ध-मात्रा-काल अति लघु वर्ण तेरह नकार को लेकर एक मात्रा-काल में प्रस्तुत हो सकता है ? मृदंग के ऐसे अनेक वर्ण-अक्षर लय-ताल की क्रियाओं को मर्मस्पर्शी अन्तःभेदी ताल-विद्या की हृदयग्राही कलाओं को जिस प्रकार-उपस्थित करते हैं, उसकी पूर्ति क्या आज तक किसी भी ध्रुवपद में किसी वर्ण-अक्षर द्वारा इस प्रकार की क्रिया करनेवाले ध्रुवपद-गायकों ने पूरी की है ? उत्तर है—'नहीं ! न ऐसा हुआ है और न हो सकता है।'

वस्तुतः मृदंग की लय-गति का अनुकरण गीत में करना अथवा उसकी गति से प्रतिद्वन्द्विता करना एक महान् भूल है। गायन, स्वर, शब्द, साहित्य की अभिव्यंजना किसी एक गति के समान हुआ करती है। विद्वानों ने गीत की अभिव्यक्ति की सफलता इसी में मानी है। लयपरक अलंकारों की सृष्टि प्रायः गीत में स्वयं होती है। गीत को उसके मार्ग से भ्रष्ट करके लय-परत्व पर निर्धारित कर देने से वह गीत कैसे कहला सकता है ? विशारदों ने मृदंग की विद्या में लय के मार्मिक अंगों के वर्ण-ताल को भरकर गीत को सजाया है। इसलिए गीतकार को अपनी संज्ञा से हीन नहीं होना चाहिए। ताल के लय और परन के थपेड़े को जानने के लिए मृदंग-वादन की शिक्षा एवं योग्यता प्राप्त करने पर गायक वड़ी सरलता से अपने ध्रुवपद के शब्द-स्वर-श्रुति को स्पष्ट रूप से दर्शाता हुआ गायन के साथ मृदंग को भी स्वतंत्र रूप से अपनी लय की कला से समावेशित कर श्रोताओं को आनंद प्रदान कर सकता है। अन्यथा, गायक जब भी गायन को दर्शाना चाहेगा, तब मृदंग की गति को निश्चय ही उपेक्षित करेगा। उसके सामने गायन के बिगड़ने का डर सदैव बना रहेगा। इसलिए ध्रुवपद-गायक के लिए उपर्युक्त पंक्ति का अनुकरण करना आवश्यक है।

गायकों में मैंने दो ही एक गायक ऐसे देखे हैं जिन्हें ध्रुवपद-गायन के अतिरिक्त वीणा व मृदंग का साधारण बोध भी हो; किन्तु मृदंगवादकों में मृदंगियों के दो वर्ग मिलते हैं—एक, गायकों के मृदंगी; दूसरे, तंतकारों के मृदंगी। इन दोनों ही वर्गों के मृदंगी लगभग चार-छह वर्ष तक मृदंग के सर्वांगीण गुणों, वर्णों की शिक्षा व साधना के बाद अपने-अपने अंग के बोलों और परनों को याद कर हाथ से साधते हैं। फिर उसी अंग के गायक अथवा वादक के साथ रहकर उसको उसकी गति से मिलाने की साधना करते हैं। तंतकारों के मृदंगी कुछ-कुछ वीणा, सरोद,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

स्वर-शृंगार अथवा रवाव की भी साधना करते हैं। ऐसे ही गायकों के मृदंगी गायकों के साथ संगत कर सुर मिलाते हैं एवं गले से ध्रुवपद-धमार भी गाते, साधते हैं। उपरोक्त विषय को स्पष्ट करने हेतु कुछ गुणियों के उदाहरण प्रस्तुत हैं; देखिए—

1. सर्वप्रथम दतिया के श्री जानकी दास जी महाराज, मृदंगाचार्य का नाम आता है। आपके बनाये हुए वहुत-से ध्रुवपद-धमार राग कल्पद्रुम में हैं। किन्तु आप वास्तव में पखावजी थे और शुद्ध वाणी, गुवरहारी के तथा डागुरी के भी उत्तम वादक-संगतकार थे। आपने अपने विलंवित वाजू का अमिट प्रभाव महाराज कुदऊसिंह पर डालकर सभा में उनसे बहुत प्रशंसा प्राप्त की थी। आप रीवां-निवासी रामसखे महाराज के शिष्य थे।

2. दूसरे, भैयालाल मृदंगाचार्य दरभंगा के हैं। आपने मृदंग में कुदऊसिंह के सभी शिष्यों में गायक-वादकों की संगत में रहकर सबसे अधिक प्रशंसा प्राप्त की थी। मृदंग के साथ गायन के संगत की दक्षता इन्होंने बेतिया के महान् ध्रुवपदाचार्य सरयू मलिक की शिष्यता ग्रहण कर प्राप्त की थी। सरयू मलिक ने प्यारे खां जैसे तानसेन-वंश के महान् गुणी को अपना गायन सुनने का व्यसनी बना रखा था। भैयालाल जी के साथ गाये हुए दो-चार वृद्ध-जनों से मैंने यह बात सुनी है कि यदि गानेवाला उनकी परनों से घबराकर ध्रुव-पद भूल जाता था तो वह धीरे-से गाकर उसकी भूल को सुधारते हुए पुनः अपने साथ कर लेते थे। तंत की भी सही संगत करने के लिए उन्होंने श्री रामगोविन्द पाठक के उस्ताद तानसेन-वंशज वासत अली खां से गिद्धौर में रहकर कुछ विद्या प्राप्त की थी, जिससे वे तंतकारों के बीच लोकप्रिय हुए।

3. गया के स्वर्गीय मृदंगाचार्य वासुदेव मलिक भारत के प्रख्यात पखावजियों में से एक थे। इनका वाज कड़क-धमक का वाज था। जितनी ख्याति इन्होंने पखावज से प्राप्त की, उससे कहीं अधिक अच्छा यह गाना जानते थे। ध्रुवपद के अतिरिक्त यह दिलरुवा बहुत ही सुरीला और रसदार बजाते थे। इनकी इस कला से प्रभावित होकर कई जगह के रईस लोगों ने इन्हें अनेकों पुरस्कारों से सम्मानित किया एवं शिष्य बनकर दिलरुवा वजाना सीखा। उदाहरणार्थ, सन् 1935 में आपने आल इंडिया कॉन्फरेंस, मुजफ्फरपुर में प्रथम पुरस्कार प्राप्त किया। कॉन्फरेंस की समाप्ति के वाद आपने एक प्रख्यात सरोदवादक के साथ बड़ी अदावट से एक विशिष्ट सभा में साढ़े तीन मात्रा की ताल की संगत में बहुत-सी परनें इतनी मधुरता से वजाईं कि सरोदवादक ने भाव-विह्वल हो उनके हाथ पकड़ लिये। यह थे, आधुनिक समय के प्रख्यात सरोद-वादक अलाउद्दीन खां। तात्पर्य यह है कि पखावजी लोग पखावज से भिन्न

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तार-यंत्र के संगत की सफलता के लिए तार-वाद्यों को सीखते हैं। बंगाल के प्रसिद्ध मृदंगी श्री दुर्लभ भट्टाचार्य गायकों की संगत के लिए प्रख्यात थे। आपने कई बार वृन्दावन, बनारस और मक्सुदाबाद धुलियान में बजाया। हर बार वह शुद्ध वाणी की संगत किसी दूसरे की ताल से उठकर सम पर आने की रीति से प्रस्तुत करते थे तथा डागुरी एवं खंडहार के उठान और सम को वह सदा दूसरे ही प्रकार से प्रस्तुत करते थे। मेरे आग्रह पर उन्होंने इस बात की प्राचीनता बतायी और कई ध्रुवपद-धमार अपने शिष्य शशी गांगुली से भी कहीं ज्यादा अच्छी तरह गाकर हमें बताये। ध्रुवपद में आप अघोर बाबू के शिष्य थे। इसके पूर्व इन्होंने अपने पिता तथा श्री राधिका गोस्वामी से भी सीखा था। जिज्ञासुओं को इस व्यक्ति के उदाहरण से ध्रुवपदों के वाणी-भेद में संगत की विशेषता से सम्बन्धित अनेक अन्तःभेदी बातें प्राप्त होंगी।

इसी प्रकार एक-दो गुणियों के नाम और लिये जा सकते हैं, जिन्हें बहुत लोग जानते हैं, जैसे कि मथुरा के पखावजी स्वर्गीय मक्खन जी सितारेहिन्द। इनके संपर्क में रहकर हमें थोड़े ही समय में पखावज की बहुत-सी गोपनीय बातें ज्ञात हुईं। ध्रुवपद-धमार और भूपाली नामक रागिनी इन्हें बहुत अच्छी आती थी। मुल्तानी और सूरमल्हार के एक-दो ध्रुवपद और धमार इन्होंने गले से गाकर भी बताये। इस विषय में सर्वप्रथम इन्होंने किसी रासधारी से स्वर-विद्या प्राप्त की थी और बाद में अघोर बाबू के प्रिय पखावजी हुए जिनकी संगत इन्होंने 18 वर्षों तक की। अघोर बाबू से ही इन्होंने ध्रुवपद की शिक्षा भी ली थी। श्री दौलत खां तथा घसीट खां ने इन्हें संगत करने पर गिद्धौर, बांकुड़ा और खडगपुर में अपनी ओर से पृथक् पुरस्कार दिये थे। स्वयं इनके मुंह से भी मैंने यही सुना कि 'पखावजी को अगर गायक की संगत करनी है तो उसे दस-पांच राग तो कम से कम दस-बीस ध्रुवपदों के साथ याद करने ही चाहिए। इसी प्रकार तंतकार के पखावजी को भी तंत सीखना चाहिए, अन्यथा पखावज बजाना केवल भड़भड़ाहट करना ही कहलायेगा।'

जयपुर के विद्वान् पखावजी जगन्नाथ पारिख तंतकारों में श्रेष्ठ सादिक अली खां के मरहूम पिता मुसर्रफ खां बीनकार तथा सांवल खां बीनकार के अत्यन्त प्रिय पखावजी थे। इनके कथनानुसार, 'पखावजी को बीन और बीनकार को पखावज भी सीख लेने से बोलों की गति की स्पष्टता दर्शाने में स्वच्छता प्राप्त होती है।'

ये सभी उदाहरण जिज्ञासुओं को केवल इस कला के अंतरंग विषय की शिक्षा प्रदान कर योग्यता के साथ साधना करते हुए कला की वास्तविकता को समाज में फैलाने और भारतीय विधाओं को सुरक्षित करने के निमित्त दिए गए

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हैं। बहिरंग में संगीत के क्षेत्र में किसी भी एक विषय की थोड़ी-बहुत साधारण शिक्षा लेकर उसे अभ्यास द्वारा लोकानुरंजन को लक्ष्य करते हुए कोई भी गायक-वादक पहले अपने सहकर्मियों में, फिर उनके द्वारा अन्य लोगों में और फिर क्रमशः समाज में पूरी ख्याति एवं स्थान प्राप्त कर लोक में गायक-वादक के रूप में प्रतिष्ठित हो सकता है। किन्तु न तो उसे इस विधा का ठीक साधक कहा जायेगा, न उसके द्वारा इस विधा के मर्म को ही सीखा-समझा जा सकता है और न ऐसे व्यक्ति किसी भी विधा की कोई उन्नति व सेवा कर समाज में संगीत-क्षेत्र का कोई कल्याणकारी कार्य कर सकते हैं। ऐसे उदरपोषक गायक-वादकों पर विधा के विषय में विश्वास करना भी भारी भूल मानी जायेगी। अतः इस विधा की साधना विधा की रीति तथा विद्वानों के मत एवं मार्ग-दर्शन द्वारा ही करनी चाहिए। तभी यह विधा प्राप्त हो सकती है और इस विधा का मर्म जाना जा सकता है।

शास्त्रों में उपर्युक्त विषय को षड्विधि काकु-प्रयोग के अंतर्गत लिया गया है जिसे प्राचीन ध्रुवपदाचार्यों ने गीत में बाँधकर कहा है :

अक्षरनी के अनुठी तान-ताल लेत गुरुन मत की।

इस प्रकार बैजू, तानसेन, डक्कु तथा चिन्तामणि मिश्र के ध्रुवपद प्रमाण में हैं, जिनमें इन महापुरुषों ने, ध्रुवपद-गायकों को किन-किन बातों की योग्यता प्राप्त करनी चाहिए, ऐसी बातों का निर्देश किया है तथा जिनका अपनी दृष्टि में ध्रुवपद-विषय की योग्यता मानकर मैंने अध्ययन किया। ध्रुवपद-विषय की योग्यता के लिए ध्रुवपद के योग्य विद्वानों की बातों को मानना और उनके आधार पर चलना ही ध्रुवपद की योग्यता प्राप्त करना है। अयोग्य रीति से स्वकथित किसी भी वस्तु की क्रिया ध्रुवपद के लिए अयोग्य होगी। इस तरह के मिथ्या-भ्रम पर स्वयं चलना और लोगों में भ्रमात्मक बातों को फैलाना किसी भी व्यक्ति के लिए अयोग्यपरक सिद्ध होगा।

सत्यतः ध्रुवपद भारतीय संगीत के अन्तर्गत कला-विधा का वह सर्वश्रेष्ठ प्राचीन गान है जिसकी रीति को प्राचीन गुणियों ने हर प्रकार से निश्चित कर दिया है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

छठा प्रकरण

ध्रुवपद-शिक्षा का शास्त्रीय महत्व

ध्रुवपद के विभिन्न तत्त्व

ध्रुवपद-गीत की शिक्षा भारतीय संगीत-कला की शास्त्रीय गायन-पद्धति में सांस्कृतिक विषयों के अन्तर्गत वह उत्कृष्ट एवं निखरी हुई गायकी-कला की शिक्षा है जो भारतीय महान् संगीत-साधकों द्वारा स्वीकृत एवं निर्मित है। इसमें साहित्य-शास्त्र का भी मर्मस्पर्शी, गुह्य एवं अनेक क्लिष्ट विषयों का थोड़े शब्दों में निचोड़, छन्दोबद्ध-गायन के सैद्धान्तिक विषय का तत्त्व-दर्शन, नाद की अपरिमित, असीम, सुरभातीत वस्तुओं को कण्ठ की सर्वोच्च नादगति के साथ मार्मिक स्वर-शृंखलाओं की गति में आबद्ध किया गया है। ऐसी ही अनेक बातों का समावेश पुरातन की गान-विद्या के विवेकशील मर्मज्ञों ने इस ध्रुवपद-प्रणाली की गायकी में कर दिया है, जिसका नाम ध्येय-संज्ञावाची शब्द में भी 'ध्रुव' है और नामगीत भी 'ध्रुवपद' है।

प्राचीन काल के प्रबंधों में केवल देव-स्तुतियों की ही विशेषता थी। साथ ही साहित्य-शास्त्र के उपमा, उपमेय, अलंकारादि की इतनी घनी झड़ी लगाई जाती थी कि स्वर-श्रुतियों की महत्ता को दर्शाने के लिए न उसमें किंचित् स्थान होता था, न स्वर-श्रुतियों को विशेष रूप से गायक अपने गायन में प्रयोग कर सकते थे। हां, प्रबन्ध-गान से पहले ही आलाप में बड़ी शास्त्रीय रीति से, क्रमपूर्वक विद्वता और पाण्डित्य के प्रयोगों को लेकर स्वर-श्रुतियों की विशेषता का वे विस्तृत रूप से प्रदर्शन करते थे। किन्तु आलाप के बाद के प्रबन्ध-गान में, उस आलाप को दृष्टि में रखते हुए, स्वर की महत्ता अल्पता में सीमित हो जाती थी। इसी तरह शास्त्रीय नामों के संज्ञानुसार आलाप के भी श्रुति-जाति-भेद को स्वरों के द्वारा प्रकट किया जाता था। देव-वन्दनाओं के द्वारा, जिनमें गणों की प्रधानता साहित्य-शास्त्र ने सिद्ध की है तथा जिस प्रकार प्रकृति-जगत् पर स्वर-श्रुतियों के प्रभाव सिद्ध हुए, साहित्य ने भी करके दिखलाया।

ध्रुवपद में साहित्य और संगीत के समान ताल को भी महत्त्व दिया गया। ध्रुवपदाचार्यों ने ध्रुवपद-गायन के द्वारा प्रकृति में विषमता, सरसता, तरलता, चाहकता, मोहकता, कारुण्य और विवशता आदि गुणों को स्वर-श्रुतियों के जाति,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

नाद-गुणों से युक्त स्वर के समुदाय, 'राग' नाम-संज्ञा देकर संचित कर दिये, जिसने निहित नाद में ब्रह्म की शक्तियों पर अधिकार प्रकट किया। यह कार्य ध्रुवपद के पूर्व की गीत-कलाओं में कभी नहीं हुआ था। हां, वेदों की ऋचाओं का रचना-कार्य साम के आधार पर यज्ञादि अंग-उपांगों की सहायता से बहुत बड़े पैमाने पर किया गया था। किन्तु केवल-श्रुतियों के प्रयोग से वह कल्पनातीत कार्य गायन द्वारा ध्रुवपद की गायकी ने ही किया, जिसमें नाद की ब्रह्म-शक्ति साकार होकर भावों में प्रकट हुई। फिर भी इस कथा का तात्पर्य यह नहीं है कि स्वर-श्रुतियों का विवेचन, अथवा क्रिया-रूप से उनका गायन, ध्रुवपद-गायकी के उद्भव से पूर्व नहीं किया जाता था। ऐसा नहीं है। ये सभी बातें पहले भी थीं, किन्तु केवल नाद की क्रिया-साधना द्वारा स्वर-श्रुतियों के संयोग से वे प्रतिफल वाह्य रूप में प्रकट नहीं किये जा सकते थे जिनको ध्रुवपदज्ञों ने प्रत्यक्ष रूप से प्रकट कर नाद की इस महत्ता को सिद्ध किया कि नाद ब्रह्म है और ब्रह्म में तदाकारता का एक सर्वोपरि साधन-तत्व निहित है। प्रवन्ध-गान में कल्पना थी, उपमा, उपमेय, अनुप्रास, श्लेष यमक आदि साहित्यिक अलंकारों का अगम भण्डार भरा था, परन्तु शब्दालंकार के समान गीत में स्वर-श्रुतियों, ताल-लय की कला का साधारण ही सही, परन्तु क्रमबद्ध, शास्त्रोक्त स्थान सुनियमित होता था। ध्रुवपद ने प्रबंध के सभी विषयों को केवल पंक्ति-विशेष के अन्तर्गत उपमेय और उपमा आदि अलंकारों के विस्तार को सीमित कर अतिरिक्त क्रियाओं को यथारूप में ग्रहण कर लिया। इस तरह अविचल सिद्धान्तों के निर्माण का ध्रुवा ध्रुवपद ने निश्चित कर दिया और नाद ने ब्रह्म का स्वरूप प्राप्त कर लिया। ध्रुवपदाचार्य नायक चरजु देव ने लिखा है—

'प्रथम ओम्कार आनंदरूप पारब्रह्म अविनाशी, पूरण पुरुष पवित्र अंग-अगोचर निरंकार अपार नेति नेति कहत, विदुष ज्ञानमान ब्रह्मा सृष्टि उपादान याही ते स्वरूप पायो।'

यह ध्रुवपद प्रबंध की छाया को पूर्णरूप से ग्रहण किये हुए है, यही दर्शाना यहां मेरा अभिप्राय है। कारण, इतनी लम्बी पंक्ति केवल स्थायी मात्र ही है। इस प्रकार के ध्रुवपद को किसी विशेष नाम-संज्ञा से अलंकृत किया जाता है। अगला ध्रुवपद निर्मूलशाह वीणाकार द्वारा रचित है जिससे हमारी यह धारणा पूर्णतः स्पष्ट हो जाती है; देखिए—

स्थायी—

शिवा, भवानी, गौरी, ईश्वरी आनन्द दीजे ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अंतरा—

सर्वमंगला, सर्वानी, रुद्रानी, मृड़ानी मैन दारिद्रय भंजे।

संचारी—

दुर्गा रानी, पार्वती, कात्यायिनी, दक्षणी, उमा, लोकमानी ;
मन वच क्रम तुम जे।

आभोगी—

निर्मूलशाह सेवक तिहारो, चरन रज, आरजा,
अम्बिका, चण्डिका, गिरिजा, अनेक विद्या निज कर सों दीजे।

यह ध्रुवपद वास्तव में ध्रुवपद है जिस पर प्रबन्ध की छाया देव-स्तुति के रूप में सहज ही दृष्टव्य है। जीवनशाह निर्मूलशाह वीणकार का उक्त ध्रुवपद मेरी मान्यता को प्रमाणित करता है। अतः इनके विषय में एक संक्षिप्त-सा परिचय देना पाठकों के लिए लाभदायक होगा। श्री जीवनशाह निर्मूलशाह के विषय में तानसेन-वंशज श्री नजीर सेन से कुछ किंवदन्तियां सुनकर मैंने लिखी थीं। बाद में वही किंवदन्तियां पुनः उन्हीं शब्द-भावों में सरोद-विद्यानिधान उस्ताद हाफिज अली खां से भी निज शिक्षा के समय सुनने को मिलीं।

निर्मूलशाह जीवनशाह तानसेन-दौहित्र-वंश में हुए हैं। कुछ गुणी लोग इन्हें मूल तानसेन-वंश का मानते हैं, जो अप्रामाणिक है। मुगल-दरबार के किसी बादशाह के आग्रह पर इन्होंने वीणा बजाकर जमुना की धारा रोक दी थी। कहते हैं, यह श्री जमुना जी के भक्त थे। बादशाह ने इनकी परीक्षा लेने के उद्देश्य से जमुना जी के पूजन के बहाने किसी व्यक्ति से कुछ फूल और फूलमाला डलवा दीं। उस समय निर्मूलशाह जीवनशाह वीणा बजा रहे थे। बादशाह ने उनसे कहा कि जमुना जी की धारा-प्रवाह के शोर से आपकी वीणा-ध्वनि हमें नहीं सुनाई देती। इस बात का मर्म जानकर दोनों भाई मुख फेरकर श्री जमुना जी को वीणा सुनाने लगे। कुछ ही क्षणों में चमत्कार हुआ। श्री जमुना जी के प्रवाह की कलकल ध्वनि शांत-स्तब्ध हो गयी, प्रवाह का वेग इतना गम्भीर हो गया कि वह फूल और माला अपने डाले हुए स्थान पर ही स्थिर हो मूर्तिवत् पड़ी रही। इसकी स्थिरता देखने के लिए बादशाह स्वयं उठे और उन्होंने नाव के चारों तरफ घूम कर देखा। इसके बाद बादशाह ने दोनों वीणाकारों के हाथ चूम लिए और अपने नाम के पीछे लगे हुए 'शाह' शब्द को इनके नाम के साथ लगा दिया। तभी से ये दोनों भाई निर्मूल खां जीवन खां शाह कहलाने लगे। साथ ही अगली तीन

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पीढ़ी तक इनके वंश को शाही सम्मान प्राप्त हुआ तथा 'दरबार-माफ' कर दिया गया। तात्पर्य यह कि बादशाह अपनी इच्छानुसार इनके घर जाकर वीणा सुन सकते थे। वीणा सुनाने के लिए इन्हें कभी दरबार में नहीं बुलाया जाता था। इसी को 'दरबार-माफ' कहते हैं। इस प्रकार बादशाह ने इनकी बहुत प्रशंसा कर 'शाह' की पदवी प्रदान करते हुए काफी आभूषण प्रदान किए। बाद में कुछ काल तक ये दोनों भाई वृन्दावन तथा रींवां और मइहर में भ्रमण कर देवी-देवताओं को ही वीणा सुनाकर प्रसन्न करते रहे। उन्हीं की स्तुति में इन्होंने कई श्रेष्ठ ध्रुवपदों की रचना कर अपनी भावना का परिचय दिया। उनकी ऐसी ही अलभ्य रचनाओं में से एक रचना उदाहरणस्वरूप ऊपर दी गयी है।

कुछ लोग मिश्रीसिंह (उर्फ नौबत खां) को ही निर्मूलशाह मानते हैं जो नितान्त भ्रममूलक है। वास्तविकता तो यह है कि जीवनशाह निर्मूलशाह के पहले वजीद खां बीनकार को 'शाह' की पदवी नहीं थी। 'शाह' की पदवी इन्हीं दोनों भाइयों के साथ चालू हुई, जो पूर्वोक्त किंवदन्ती में उल्लिखित चमत्कार से प्रभावित हो किसी मुगल बादशाह द्वारा प्रदान की गई थी। उस्ताद हाफिज अली खां साहब सरोद-नवाज से यह चर्चा जनवरी, 1938 में हुई थी जिसमें उन्होंने जहांगीर तथा शाहजहां के नामों का उल्लेख किया था। उपर्युक्त कथा बादशाह के शतरंज खेलने के समय की है, जब श्री जमुना जी की कलकलाहट से उत्पन्न शोर को बन्द करने के लिए बेगम के कहने पर बादशाह की यह आज्ञा निर्मूलशाह को वीणा बजाकर शोर बन्द करने हेतु दी गयी थी। किन्तु तानसेन-वंशज झंडेसेन तथा नजीर सेन से यह कथा मैंने प्रार्थना के रूप में पायी। ये दोनों ही मूल तानसेन-वंश के महान् गुणी और दीर्घ आयुष्य वाले व्यक्ति थे। जीवनशाह को श्री राधावल्लभीय सम्प्रदाय की दीक्षा भी प्राप्त हुई थी, जिसमें भगवान् श्रीकृष्ण की श्रृंगार-भावना के ध्रुवपदों में समर्पण का भोग जीवन-वल्लभ के रूप में किया गया है। यह बात महाराज नरसिंह दास जी से मालूम हुई।

उल्लेखनीय है कि महात्माओं में, पहले से लेकर हमारे समय तक मुसलमान संगीतज्ञों को मंदिर में ठहराने और भगवान् को संगीत सुनवाने की प्रथा आदर-पूर्वक चालू थी। इसका प्रमाण यह है कि मैंने स्वयं स्वर्गीय काले खां ध्रुवपदिये को जीवन भर मिथिला प्रान्त के अनेक मंदिरों में बड़ी श्रद्धा और भक्ति के साथ गाते हुए सुना है। इसी प्रकार इटावा के मरहूम सितारिये, महान् गुणी हामिद हुसैन खां अयोध्या के मंदिरों में ठहरते और सितार बजाते थे। अस्तु, उपर्युक्त उदाहरण मात्र भ्रम मिटाने के निमित्त उपस्थित किया गया है। वस्तुतः मूल प्रसंग गीत-भेद पर महान् गुणियों की चर्चा करना है। अतएव प्रस्तुत चर्चा के अन्तर्गत गीत में शब्द-भावों के प्रयोग और कर्ताओं की काल-भावना पर व्यक्ति

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

की प्रत्यक्ष मानसिक क्रियाएं किन कारणों और उपादानों को लेकर चलीं, उन्हीं का विवरण जिज्ञासुओं के सम्मुख रखना, प्रस्तुत करना हमें अभीष्ट है।

नायक चर्जू और डक्कु ग्वालियर के राजा मानसिंह तोमर के दरबारी संगीत-विद्वानों में से थे। इतिहास की दृष्टि से मानसिंह का दरबार अनेक प्रकार की भारतीय सांस्कृतिक कलाओं का गढ़ था। स्वयं राजा मानसिंह भी संगीत-विद्या के भारी विद्वान् थे और नित्य गन्धर्वों के अखाड़े का निरीक्षण करते थे। विद्वानों के मतानुसार, "मूलतः प्रख्यात बैजू बावरा नामक गुणी ने यहीं से संगीत-विद्या का ज्ञान प्राप्त किया था। मानसिंह का राज्य, बावर के साथ युद्ध होने पर मुहम्मद गौश के विश्वासघात करने के कारण समाप्त हुआ। मानसिंह के सभी दरबारी गायक ध्रुवपद-धमार के अच्छे ज्ञाता थे।" ध्रुवपद की दृष्टि से यह तथ्य विचारणीय है। जो भी हो, मेरा अभिप्राय है कि ध्रुवपदियों ने नाद को ब्रह्म के स्वरूप में देखा और उसे सिद्ध करके सिद्धि भी प्राप्त की, जो प्रवन्ध-काल के गायन मात्र से किसी भी गायक को प्राप्त न हो सकी थी।

ध्रुवपद के अनेक प्राचीन जानकारों में राजा भानुपाल भी ध्रुवपद के विद्वान् थे, जिनका काल इसी समय के आसपास माना जाता है। इनके द्वारा रचित ध्रुवपद शास्त्र का निचोड़ लिए हुए हैं। उदाहरणार्थ भानुपाल का एक ध्रुवपद प्रस्तुत है—

स्थायी—

प्रथम ओम्कार स्वर षड्ज नाद ब्रह्म ने उचारो,
मूलधार रिषभ ब्रह्मा शिव डमरू गंगाधर,
गंधार लय बजायो, महति नारद वीणा मध्यम पुनि,
शेषनाग मतनिषाद ग्राम लय बतायो।

अन्तरा—

गावत गुन सनकादि तुम्बरु मतंग,
भरत रावण गुण गायो,
रम्भा अर्जुन हनुमदादि,
इन्द्रहु कुबेर कर मृदंग बजायो,
ध्याये ताल काल कालहु कराल समझायो।

इसी प्रकार बहुत-से प्राचीन ध्रुवपद, ध्रुवपद-आचार्यों द्वारा रचित मिलते हैं जिनमें उन्होंने इस दैवीय विद्या को दैवीय स्थानों द्वारा पूरित कर, नाद को

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सारे जगत् का मूल बताते हुए संगीत की सार्थकता को सिद्ध करके नाद के साधक को परम संतोष, शांति और महानता प्रदान की है। इससे अधिक ध्रुवपद की शिक्षा का शास्त्रीय दृष्टि से और क्या महत्व हो सकता है ?

ध्रुवपद की प्रामाणिकता में गति-भेद को लेकर एक ग्रन्थकार ने लिखा है—

तच्चतुरविध मेवस्यात्तत्र चित्र पदाभिदा ।
चित्रकला ध्रुवपदा पात्रचालीति प्रभेदतः ॥
ध्रुवंगात्वा भिन्न धातुर्यत्राभोगस्तु गीयते ।
उक्तयोर्लक्षणयता सैका ध्रुवपदामता ।
भिन्नधातुभिरुद्ग्राह ध्रुवाभोगैपराद्विधा ॥

यह भी एक विचार है। किन्तु मेरी दृष्टि में महानता उपर्युक्त गुणों को को ही लेकर है, जिसे हम महत्व देते हैं। सदा नित्य आनन्दमय तत्व को रचनाकारों ने ईश्वरत्व की प्राप्ति के निमित्त अपनी भावनाएं गीत-रूप में अर्पित की हैं, और वही गेय हैं। ध्रुवपदों के निमित रचयिताओं ने उपर्युक्त पंक्तियों को ध्येय मान कर ही गेय-तत्व का विधान किया।

ध्रुवपद-परम्परा में द्वादश आल्वारों का स्थान

स्वामी हरिदास इस गंधर्वी-विद्या की सर्वमान्य मूर्ति थे। उनके विचार और आचार नैतिकता की असीमित श्रेष्ठतम कल्पनाएं थीं जिनका अनुकरण करके भारतीय संस्कृति को चरमत्व पर पहुँचाया जा सकता था। उनके ध्रुवपदों के भाव, स्वरों की स्निग्धता और शास्त्रीयता से परिपूर्ण हैं। सच तो यह है कि भावनाओं को गीतों में पिरोकर सर्वप्रथम आल्वारों ने समाज में व्यक्त किया। वैसे जहां तक साम्प्रदायिक संगीत के इतिवृत्त का प्रश्न है, उसके लिए इतिहास के आधार पर यह कहा जा सकता है कि सर्वप्रथम श्री-सम्प्रदाय के द्वादश आल्वारों के द्वारा ही वेद-ध्वनि, छन्द-गान और प्रवन्ध आदि के रूप में गीत के विकास का मार्ग प्रशस्त किया गया। इस तरह पथ-प्रदर्शन का सारा श्रेय इन्हीं आल्वारों को प्राप्त होता है। दिव्य-प्रवन्धम् गीत के साथ-साथ नृत्य के उस प्राचीनतम् भेद की—जिसे 'देव-नृत्य' कहना चाहिए—कल्पना भी इन्हीं की परम्परा में दृष्टव्य है। प्रभु-सेवा में सभी दिव्य कलाएं समर्पण करते रहना आल्वारों का आदेश रहा है। यह संप्रदाय कितना प्राचीन हो सकता है, इसका अनुमान इस तथ्य से लगाया जा सकता है कि अंतिम वारहवें आल्वार रामानुजाचार्य थे, जिनका समय विक्रम

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सम्वत् दस से ग्यारहवीं सदी तक इतिहासकारों द्वारा मान्य है। इसी प्रकार निम्बार्काचार्य बारहवीं, विष्णु स्वामी तेरहवीं, माधवाचार्य चौदहवीं सदी में हुए—यह सर्वमान्य हैं।

ध्रुवपद की गायन-परम्परा

वर्तमान काल के संगीत की डोर स्वामी हरिदास के नाम के साथ जोड़ी जाती है। रचना की दृष्टि से स्वामी हरिदास के गीतों में श्री राधाकृष्ण की अंतरंग क्रीड़ाओं और लीलाओं को गेय किया गया है, जिसे जन-जनसाधारण की भाषा में 'रासलीला' कहते हैं। मैं भी इसे रासलीला कहता हूं। इस विषय के हमारे गुरुवर्य ध्रुवपदाचार्य महाराज सन्त नरसिंह दास, स्वामी हरिदास के सम्प्रदायानुगामी थे, वह इसे 'रहस्य-लीला-गान' कहा करते थे। रासलीला संबंधी सांगीतिक-गीत-रचना का विशेष आविष्कार-प्रचार जनसाधारण की दृष्टि से सूरदास और नन्ददास से ही आरम्भ होता है। सूरदास का जीवनकाल विक्रम सम्वत् 1553 से 1640 वि० तक माना गया है। इसी प्रकार नन्ददास के जीवन-काल की अथ-इति तिथि विक्रम सम्वत् 1590 से 1690 तक मानी गयी है। उस समय तक संगीत-विद्या के कलाभेद का महान् उत्कर्ष इन्हीं लोगों के निवासस्थल वृन्दावन में हुआ था। समाज में रासलीला का प्रादुर्भाव निम्बार्क संप्रदाय के परम्परागत आचार्य घमण्डदेवाचार्य से माना जाता है। ऐतिहासिक शोध के आधार पर इनकी आयु 106 वर्ष की मानी गयी है। रासलीला के गीतों को राग-तालबद्ध करके गानेवालों में राधाकृष्ण रासधारी का नाम इतिहास-प्रसिद्ध है। इन्होंने 'रास-सर्वस्व' नामक पुस्तक भी लिखी थी। अतः स्पष्ट है कि रासलीला-सम्बन्धी गीत-भाव हरिदास स्वामी से पहले ही प्रचलित हो चुका था।

कुम्भन स्वामी को वल्लभाचार्य ने शिष्य बनाकर अपने सम्प्रदाय की महत्ता बढ़ाई, जैसा कि सूरदास के साथ वल्लभ ने किया था—यद्यपि सूरदास आचार्य वल्लभ से अवस्था में बड़े थे तथा संगीत और साहित्य के अच्छे विद्वान् थे। वह आचार्य वल्लभ के संप्रदाय में सम्मिलित होने से पहले ही प्रसिद्ध हो चुके थे। इसी प्रकार कुम्भन स्वामी को भी आचार्य वल्लभ ने अपने सम्प्रदाय में सम्मिलित किया। कुम्भन स्वामी का जन्म संवत् 1525 तथा शरीर-त्याग 1640 में माना गया है। कुम्भन स्वामी को संगीत और साहित्य की कला स्वामी हरिदास से प्राप्त हुई थी। उसी को उन्होंने गेय किया। उनके जिन सहज और अल्प शब्दों में जिस रस-रहस्य का उदधि-मंथन हुआ है, उसे स्वामी हरिदास के गीतों में ही पाया जा सकता है। स्वामी हरिदास ने सर्वप्रथम् एकमात्र कुम्भन को ही संगीत-विद्या का ज्ञान प्रदान किया था तथा आमेर के राजा मानसिंह ने अपनी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रथम वृन्दावन-यात्रा के समय उनके वीणावादन पर मुग्ध हो नवरत्नजटित दर्पण प्रदान किया था। संगीत की साधना के साथ रासरसिक-भाव की उपासना तथा ऐहिक पदार्थों द्वारा अर्जित सुखोपभोगों का त्याग, आदि बातें भी स्वामी हरिदास के ही जीवन में घटित होती हैं, जिनकी छाप कुम्भन स्वामी पर यावत्जीवन देखने में आती है।

रासलीला की प्रथम स्थापना वृन्दावन में चीरघाट पर स्वामी हितहरिवंश ने विक्रम संवत् 1951 में की थी। रास बिहारी जी की उपासना स्वामी हरिवंश के ध्रुवपदों में गायी गई है जिसे लिपिबद्ध करते हुए जगन्नाथ स्वामी के पुत्र विट्ठल विपुल स्वामी ने राग-विद्या की कला में सजाकर उनके रासविहार से संबंधित अनेक ध्रुवपद लिखे जो दुर्लभ गान-विद्या में कला तथा भावना के श्रेष्ठतम् उदाहरण हैं।

उल्लेखनीय है, स्वामी हितहरिवंश तथा हरिदास स्वामी एक ही भावना और उपासना के देह और प्राण-स्वरूप हैं। हरिदास स्वामी का निवास-स्थल निधिवन हरिवंश स्वामी के निवास-स्थल के समीप ही है। श्री हितहरिवंश का देहावसान विक्रम संवत् 1609 में हुआ। इन्होंने भी रासलीला से सम्बन्धित अनेक ध्रुवपद रचे, जो कला-विद्या के श्रेष्ठ अलंकारों में रत्नों के समान दीप्त हैं। ग्वालियर के राजा मानसिंह तोमर इनके समकालीन हैं। डॉ० सुनीति कुमार चाटुर्ज्या के मतानुसार, 'हरिदास स्वामी, बाबर, हुमायूं और अकबर के समय तक वर्तमान रहे हैं। हितहरिवंश गोस्वामी के समय दिल्ली में लोदी-वंश राज्य कर रहा था।'

तात्पर्य यह है कि राजदरबारों में रहनेवाले कला-विद्या के गुणीजन सामाजिक और राजकुल के प्रसन्नार्थ रचना करते होंगे। अधिक नहीं, तो अल्प रूप में चित्तानुरंजन का लोभ और कला-विद्या की विशुद्धता अपनी ओर उन्हें अवश्य आकर्षित करती रही होगी; जबकि इन महापुरुषों ने नैत्यिक और निगमागम की वन्दना के निमित्त संगीत-मार्ग को सर्वस्वरूपेण व्यवहृत कर उपासकों को प्राचीनता के पथ पर लक्षित कर रखा होगा। ध्रुवपद के रचयिताओं की शास्त्रीय दृष्टि और ऐतिहासिकता को लक्ष्य में रखते हुए ही मैंने उपर्युक्त बातों में प्रचलित मान्य तिथियों तथा इतिहासकारों द्वारा मान्य तिथियों का उल्लेख किया है।

ध्रुवपद-धमार के रचयिताओं के रूप में इन महापुरुषों के अतिरिक्त प्राचीनकाल के अनेक संगीतज्ञों एवं साहित्यिकजनों ने भी अपनी कला के बल पर अतिश्रेष्ठजनों के समकक्ष ख्याति प्राप्त की। इनमें तानसेन का नाम अग्रगण्य है। तानसेन के समय उन्हीं के साथ रामदास संगीत-कला-नायक भी विद्यमान थे। यह हरिदास के शिष्यों में अग्रगण्य गुणियों में से एक थे। तानसेन की स्वर-कल्पना में, जो रागों के परिवर्तन से हुई थी, रामदास जी ने अपनी कल्पना की

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सूक्ष्मता मिला कर नये रागवृत बनाये। उदाहरण के लिए इन्होंने 'मियां की मलार' पर आधारित उन्हीं स्वरों में 'रामदासी मलार' गाकर तानसेन से उपहार-स्वरूप मुक्ता-माला पायी। रामदास-रचित कुछ ध्रुवपद हमें तानसेन-वंशजों से ही प्राप्त हुए हैं। इन रचनाओं को वे लोग ध्रुवपद की कठिन साधना को सुगम करने के उद्देश्य से स्वयं प्रयोग में लाते थे। बड़ी कृपा होने पर ही किसी योग्य विद्यार्थी को पाँच-दस वर्ष के शिक्षा-काल में रामदास द्वारा रचित अधिक से अधिक आठ या दस ध्रुवपद ही सिखाये जाते थे। नजीरसेन ने रामदास रचित सालंक-तोड़ी में एक ध्रुवपद सुनाते हुए कहा था कि 'एक बार इस ध्रुवपद को गाकर रामदास ने तानसेन को परास्त कर दिया था। इसकी गमक तानसेन से नहीं भरी गयी थी।'

रामदास के पुत्र सूरदास गायक ने मियां की सारंग से अधिक श्रेष्ठ-स्तरीय सूर-मल्हार की रचना कर तानसेन से प्रशंसा प्राप्त की थी। आप भारतीय संगीत के एक सांस्कृतिक पुरुष थे। आपकी रचनाएँ बड़ी अल्प हैं जो दुर्लभ ही नहीं, अप्राप्य हैं। कुछ लोगों के मतानुसार, 'तानसेन के समकालीन रामदास वल्लभीय अच्छे रचनाकार थे।'

भारतीय संगीत की दो शाखाएं

भारतीय संगीत को दो शाखाओं में विभाजित किया जा सकता है—

1. धार्मिक मन्दिर के संगीतज्ञ,
2. मुस्लिम सम्प्रदाय के संगीतज्ञ।

रचना की दृष्टि से संगीत-शास्त्र की दो मर्यादाएं निर्धारित की गयी हैं—

1. एक, स्वर-शास्त्र की मर्यादा, जिसमें बँधकर साहित्य के अनुशासन में रहते हुए भावनापूर्ण ईश्वरीय (आंशिक) भगवत्-अवतारों की महिमा का यशोगान किया गया है।
2. दूसरी, दरबारी मर्यादा, जिसमें बंधकर राज-दरबारों में रहने के कारण राज-परिवार की प्रसन्नता और दरबार में उपस्थित जन-समूह की अभिरुचि के अनुसार रचनाएं की गई हैं। इस प्रकार की रचना में स्वर-परिवर्तन होने से साहित्य और संगीत की पूर्ण अवहेलना तथा मर्यादा का सर्वांगीण विनाश हुआ—इस तथ्य की विवेचना हम पहले ही विस्तारपूर्वक कर चुके हैं।

धार्मिक सम्प्रदाय के मंदिरों में इन दोनों रीतियों का यथेष्ट रूप से पालन किया गया—यद्यपि धर्मगुरुओं ने भक्ति-भावना से पूर्ण सरल और सहज भाव के

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कलाविदों को न तो किसी प्रकार की सहायता प्रदान की, न आज तक किसी कला-विधा के उत्थान में इन लोगों का किंचित्मात्र भी सहयोग रहा है। इस कारण विशुद्ध भारतीय संगीत-कला के विशेषज्ञों और साधकों की पीढ़ियों ने इस (दूसरे प्रकार) की मर्यादा में बंधकर साधना नहीं की। वल्लभीय सम्प्रदाय में, जिन अष्टछाप के कलाधरों की कृतियां प्राप्त होती हैं, उनकी स्वर-रचना भारत के किसी भी मन्दिर के गायक को लेशमात्र भी ज्ञात नहीं है। कई वार ऐसे रागों को हम परम्परागत कीर्तनकारों के द्वारा ध्रुवपदों में गाते हुए सुनते हैं, जिनका गायन ही ध्रुवपद-प्रणाली में निषिद्ध है। ऐसी स्थिति में उन तथा-कथित महान् गायकों ने इन कृत्रिम और विकृत अशास्त्रीय दग्ध-स्वरों में अपने ध्रुवपद रचकर किस तरह प्रभु-सेवा में सुनाये होंगे—यह विचारणीय विषय है।

मुस्लिम संगीतज्ञों में भी ऐसी एक-दो वंश-परंपराएं विगत वर्षों तक मिलती थीं जिन्होंने विशुद्ध भारतीय सांस्कृतिक स्वर और साहित्य की मर्यादा का पालन करने के लिए बादशाहों की अभिरुचि का भार वहन कर सकने में अपनी असमर्थता बतलाकर राज-दरबारों का परित्याग कर दिया, परन्तु कला को पथभ्रष्ट नहीं होने दिया—जैसे कि तानसेन और बालसेन की वंश-परंपरा, साहब खां की परम्परा, कालपी घराना, खजूर गांव के मल्लिकों की परम्परा, आदि। इन सभी में हमें शास्त्रीयता की दृष्टि से ध्रुवपद की शिक्षा का वास्तविक विचार-युक्त रूप प्राप्त हो सकता है। लेकिन अब तो इनकी परम्पराओं से भी हमारी यह सांस्कृतिक गायन-विद्या विस्मृति के गर्भ खो गयी है।

कई लोग शास्त्रीय रूप के ध्रुवपद-लेखन में तानसेन-वंशजों से भी आगे रहे हैं। स्वयं तानसेन के पुत्रों से भी अधिक श्रेष्ठ रचनाकार एवं गायक उनके समकालीन चरणदास हुए हैं। इनकी समाधि तानसेन के ही समीप बनायी गयी है। इनके गायन में बहुत अधिक आकर्षण था, जिससे प्रभावित होकर तानसेन ने इनका नाम 'सुखचरण' रख दिया था। इनके द्वारा रचित मात्र 21 ध्रुवपद हैं जिन्हें तानसेन-वंशजों ने अपना रखा है। ऐसे रचनाकारों में संगीत-नायक धोंधी का नाम उल्लेखनीय है। इन्हें 'साम्प्रदायिक संगीत के अधिनायक' के रूप में भी याद किया जाता है। शास्त्रीयता की दृष्टि से इनकी रचनाएं बड़ी गम्भीर हैं। स्वर की कल्पना बैजू से मिलती हुई जरूर है, किन्तु उनके भराव-सांस कहीं अधिक कठिन प्रतीत होते हैं। संभवतः यह कोई योगी संगीतज्ञ रहे होंगे।

ध्रुवपद की शिक्षा में शास्त्रीयता का विचार करते समय शास्त्र से परि-चित लोगों की ओर भी ध्यान देना आवश्यक है। कारण, कि जो लोग शास्त्र के पठन-पाठन से दूर हैं तथा जातीय संस्कार और व्यक्तिगत विचारों से सदा हीन भाव में रहने वाले हैं, वे शास्त्रीयता के अनुसार रचना कर भी कैसे सकते हैं?

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ध्रुवपद के लिए शास्त्र का पठन-पाठन एक विशेष कार्य है। इसे यदि हम जीवन-चर्या कहें तो अनुचित न होगा। इसलिए शास्त्रीय दृष्टि से ध्रुवपद की शिक्षा जिन लोगों को प्राप्त हुई है, जिन लोगों ने ध्रुवपद की शिक्षा पर शास्त्रीय दृष्टि से चिंतन किया है और जिन्हें यह ध्रुवपदीय शिक्षा साध्य हुई है उन लोगों के विषय में बतलाने से विषय अधिक प्रामाणिक हो सकेगा और पाठकों के लिए भी यह हितकर होगा।

साम्प्रदायिक संगीत-परम्परा

साम्प्रदायिक संगीताचार्यों में धोंधी प्राचीन लोगों में से एक हैं। स्वामी हरिदास की परम्परा से बहुत लोगों ने संगीत का ज्ञान प्राप्त किया था। ललित किशोरी के भावनापूर्ण ध्रुवपद मुक्तक छन्दों में हैं और स्वर-शृंगार वाद्य पर गाए जाते हैं। आपसे भगवान् श्रीराम के उपासकों ने भी रसिक-उपासना के कई गूढ़ रहस्यों को जानकर संगीत-विद्या की कला के माध्यम से भगवत्-उपासना को सजीव रूप में प्राप्त करने में सहायता प्राप्त की थी। किशोरी अली भी एक महान् ध्रुवपदज्ञ थे। तानसेन-वंश के सुप्रसिद्ध तानतरंग सेन ने अपने वंश के गुरु-परम्परा-आचार्य किशोरी अली से विशेष शिक्षा प्राप्त की थी। तानतरंग की रचनाओं में ध्रुवपद की शिक्षा से सम्बन्धित शास्त्रीय श्रुति-नियमों और प्रयोगों के सूक्ष्म दर्शन और वर्णन की जो विशेषता प्राप्त होती है, वह किशोरी अली के अतिरिक्त किसी भी अन्य गायक की रचना में दुर्लभ है। रीवां घराने के महाराजाओं ने भी तानतरंग का गायन सुनकर किशोरी अली से संगीत की विशेष शिक्षा प्राप्त की थी। ऐसी किंवदन्ती रामसखे ध्रुवपदाचार्य की शिष्य-परम्परा में किशोरी शरण जी रीवांवाले अन्ध गायक से हमें सुनने को मिली। जयपुर के प्रसिद्ध बीनकार तानसेन-वंशज स्वर्गीय लालसेन नवाबसेन से सर्वप्रथम इस घराने का परिचय हमें प्राप्त हुआ था और आप ही के द्वारा इस घराने की कुछ चीजें भी हमें प्राप्त हुई थीं।

सम्प्रदायाचार्यों के जिन महान् रचनाकारों की रचनाएं ध्रुवपद की शिक्षा के सन्दर्भ में प्राप्त होती हैं उनमें श्री कृपानिवास, रसिकअली, रामप्रिया, मौनमुदित जीवनअली, बड़े मौनीजी, मधुप अली तथा वारा चन्दवारा-निवासी मधुसूदनाचार्य के नाम प्रमुख हैं। ये लोग रीवां घराने के रामसखे महाराज की ध्रुवपद-प्रणाली के विशेषज्ञ थे। इस घराने की गायकी में हरिदास स्वामी के समान ही स्वल्प शब्दों में गूढ़ भावों की विवेचना से युक्त ध्रुवपद मिलते हैं, परन्तु गायकी चारों बानियों की है। रामसखे महाराज विशुद्ध खण्डहार वानी के गायक थे। अतिरिक्त आचार्य गुबरहारी के साधक थे। मधुपअली हमारे संगीत-क्षेत्र में प्रवेश करने से

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मात्र एक वर्ष पूर्व ही साकेतवासी हुए थे। आपके द्वारा रचित ध्रुवपद, पद्म छन्द, नाग और मुक्ता में हैं, जो किशोरी शरण द्वारा हमें प्राप्त हुए। इनकी सांसें भी भरने में अपूर्ण रह जाती हैं। ऐसे आचार्यों ने बहुत कठिन रागों में ध्रुवपद की रचना की है, जिनका प्रचार सम्भवतः किसी भी काल के सांगीतिक समाज में पूर्णरूपेण नहीं हो सकेगा; उदाहरण के लिए कुमारी-विहंगड़, हर्ष, वैराग, योगध्वनि, सालंक, जूही, कुरंक, बहुला, वंक। ऐसे बहुत-से प्राचीन राग सामयिक प्रभु-सेवा में उत्थापन और शयन के लिए प्रयुक्त हुए हैं। मयंक और पावस इस घराने में प्राचीन मेघ के समान ही अत्यन्त शुद्ध रूप में मिलते हैं। यही साम्प्रदायिक संगीत के विशेषण की विवेचना है।

जनसमूह में लोकप्रियता प्राप्त करने वाले जनरुचि-पोषक गायक जीविका के कारण अर्थ के प्रलोभन से बहुत बार प्राचीन राग के स्वरों में परिवर्तन करते पाये जाते हैं। मियां की मलार, बहादुरी तोड़ी, इत्यादि अनेक लोकप्रिय राग अपनी लोकप्रियता को बनाए रखनेवाले गायकों द्वारा निर्मित हैं। सुघराई का प्राचीन नाम आज भी कुछ प्राचीन गुणियों में प्रचलित है। कई बार शुद्ध रागों में भी ख्याति-प्राप्त गायकों ने किसी राग-विशेष की उचित शिक्षा न होने पर भी किसी द्रव्यदाता के द्वारा समाज में प्रशंसा पाने पर अनुमान के आधार पर उसे गाया है। इस प्रकार राग का वह भ्रष्ट स्वरूप शुद्ध राग को सदा के लिए कलंकित कर देता है। आजकल यह काम बड़े साहस के साथ कुछ लोग कर रहे हैं। प्राचीन रागों में से बहुत-से राग, जिनके नाम सच्चे और स्वर झूठे हैं, प्रचार में हैं। उदाहरण के लिए वर्तमान 'रामकली', 'जयजयवन्ती', 'देश' और कई बार 'तिलक-कामोद' अपने विकृत स्वरों में मिलता है। इस प्रकार की त्रुटियां, रीवां, बेतिया, कालपी घराना और खजुर गांव के ध्रुवपदियों में नहीं मिलती हैं; जबकि कुछेक ख्याति-प्राप्त लोगों ने इन गायकों के घरानों के विषय में बहुत-सी निन्दास्पद और कुटिल बातों को फैलाकर संगीत-कला-प्रेमियों के हृदय में उनके प्रति तटस्थता उत्पन्न कर दी है, फलस्वरूप शिक्षित संगीत-प्रेमी भी उनके लिए 'लकीर के फकीर', 'रूढ़िवादी,' इत्यादि शून्य-संज्ञावाची शब्दों का प्रयोग करने लगे। परिणाम यह हुआ कि हम सत्य और असत्य के निर्णय से वंचित रह गये और अब वास्तविकता के ऊपर शंका के बादलों को उमड़ा हुआ पा रहे हैं, जो स्वकल्पित हैं, यह जानकर भी हमें पक्ष का पवन ढकेलकर वास्तविकता से दूर लिये जा रहा है।

साम्प्रदायिक संगीत में सर्वश्रेष्ठ परंपरा के रूप में हरिदास स्वामी की संगीत-परम्परा निर्विवाद रूप से प्रामाणिक और कलाविदों द्वारा मान्य है। हरिदास स्वामी की भावाभिव्यक्ति ध्रुवपद-गायन-प्रणाली में जिस रूप में हुई, परंपरागत आचार्यों ने सदैव उसका यथावत् अनुकरण किया। श्री भगवत् रसिक

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

साहित्य-विधा के सर्वमान्य आचार्यों में से थे। हरिदास स्वामी से साम्प्रदायिक शिक्षा पाने के पूर्व आपको भगवान् गणेश की सिद्धि प्राप्त हो चुकी थी, जिसका प्रमाण यह ध्रुवपद है :

मोहे वर गुरु गणेश यह दीनो।

आपने दो व्यक्तियों को मृदंग-विद्या की पूर्ण शिक्षा देकर सिद्धि प्रदान की, जिनका वंश पखावजियों में सर्वोत्तम कहलाया—यह बात गोपीनाथ और देवनाथ से सुनने को मिली। वैसे पखावजियों में यह उक्ति प्रचलित है—

दास जी से भई पखावज लाले भवानी से गयी।

दास जी, नाथ जी की परंपरा में माने जाते हैं। नाथ जी के चार चौकड़े नीलाम्वर पीताम्वर की वेद-ध्वनि के समान वेजोड़ माने जाते हैं। जो भी हो, भगवत् रसिक को संगीत-कला की सभी सिद्धियां प्राप्त थीं, जिसके फलस्वरूप संगीत से सम्बन्धित सभी विषयों के विद्वानों ने आपसे दीक्षा प्राप्त की तथा आपकी अत्यधिक प्रशंसा हुई। अपनी सारी प्रशंसा को श्री श्यामाश्याम के चरणों में एक ध्रुवपद के द्वारा अर्पित करते हुए उन्होंने बड़े ही विनीत भाव से लिखा है—

भगवत रसिक प्रशंसित कीजे श्यामाश्याम सहायक आरजू।

नागरीदास के ध्रुवपद भी हरिदास स्वामी की ही भावना को शब्दों में ढालकर व्यक्त करते हैं। किन्तु इनमें रागों की संख्या बहुत है। गौड़-सारंग के स्वरूप ने आपके ध्रुवपदों में, संगीत-नायक चंचल दास, जिनकी रचना 'चंचल शशि मल्लार' नाम से प्रसिद्ध है, के स्वरों से भी अधिक सौन्दर्य प्राप्त किया है। उदाहरणार्थ—

वचन न दे गान कीजै।

इस ध्रुवपद का जोड़ तीन आचार्यों ने लिखा जिसमें व्यास जी सबसे अधिक सफल हुए। इनके एक ध्रुवपद का भोग देखिये—

व्यास की स्वामिनी तेरी मयासों पायो नाम बिहारी।

इस ध्रुवपद में कितने सरस और सहज शब्दों में स्निग्ध-भाव की पराकाष्ठा नाम-प्रयोग के माध्यम से अंकित कर दी गयी है, यह दर्शनीय है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इसी प्रकार नागरीदास, ललित किशोरी आदि आचार्यों को, ऐतिहासिक दृष्टि से ध्रुवपद की शास्त्रीयता को प्राचीन स्वर-क्रमवद्धता से सम्बन्धित प्रामाणिकता प्रदान करने में सर्वोच्च स्थान प्राप्त हुआ है। साम्प्रदायिक संगीत में यदि वल्लभ-सम्प्रदाय के कीर्त्तनकारों को धर्मगुरुओं द्वारा सापेक्ष सहायता और कला के प्रति अभिरुचि का आश्रय प्राप्त हुआ होता तो इस सम्प्रदाय का गीत-संग्रह भारतीय संगीत के मूर्त्तिमान् ध्रुवपद-गायन का जीवन्त प्रमाण होता, जिसके माध्यम से हमें आज से 500 वर्ष पूर्व के श्रेष्ठतम आठ गायकों की गायकी वड़े प्रामाणिक और ऐतिहासिक रूप में प्राप्त होने का सौभाग्य मिलता। किन्तु वर्तमानकालीन धर्म के मठाधीशों की धारणा के समान ही धर्म के तथाकथित ठेकेदारों द्वारा पहले भी कलाविदों की उपेक्षा की गयी, जिसके फलस्वरूप उन गायकों के वंशजों ने संगीत की साधना से अपने को पृथक् कर लेना ही अधिक उचित समझा।

वस्तुतः साम्प्रदायिक संगीत के अन्तर्गत जिस आधार को लेकर रचनाएं की जाती हैं उसमें उपासना का भेद होता है। इसे 'रस-भक्ति' कहते है। यह राम और कृष्ण दोनों अवतारों के उपास्य-भेद में मिलती है। संगीतज्ञों में हरिदास स्वामी का सम्प्रदाय तथा हितहरिवंश-सम्प्रदाय के सभी गायक सखी-भाव के उपासक थे तथा उन्होंने शृंगार एवं माधुर्य-भाव की उपासना में ही अपनी वाणियों को अर्पित कर दिया है। इसे रस-मर्मज्ञ लोग 'रसराज' और 'रसरीति' कहते हैं।

रीवां-घराने के सभी संगीतज्ञ राम के उपासक थे। रामसखे के वाद वड़े मौनी जी बहुत वड़े गुणी हुए। इस सम्प्रदाय के मूल आचार्य रामसखे ही हुए हैं जो किसी राजा के पुत्र थे। सख्य-शृंगार-भाव जैसी कठिन उपासना में इन लोगों ने प्रायः सभी सम्प्रदाय के उपासकों से श्रेष्ठता का वचन पाया हुआ था। वड़े मौनी जी ने किसी सिद्ध महात्मा से संगीत की सिद्धि पायी थी। यह नेपाल के निवासी और राजकुल-वंशज थे। रामसखे-सम्प्रदाय के किसी सन्त-गायक का गायन सुनकर उनसे दीक्षा ले सर्वप्रथम सख्य-शृंगार की रचना आपने ध्रुवपदों में की। वाद में किसी सिद्ध संगीतज्ञ के दर्शन और आशीर्वाद से आपने अनेक भाव के ध्रुवपद-धमार रचे। आपने बहुत-सी रचनाएं गोस्वामी तुलसीदास कृत 'गीतावली' तथा 'विनय-पत्रिका' की मात्र स्वर-रचना में लीं। उदाहरणार्थ, वड़े मौनी जी रचित एक धमार देखिए—

डगर नगर में धूम सों घर घर वरसगांठ प्यारी जनक लली की।

यह रचना मुझे झण्डेसेन खेतड़ीवाले से मिली थी।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

रीवां में राजा रामसिंह के समय तानसेन दरबारी-गायक थे। वहां की नींव भी तानसेन की ही रक्खी हुयी है। अन्तर केवल इतना है कि वे लोग जन-रुचि में न पड़कर ईश्वरीय प्रशंसा (प्रसन्नता) के इच्छुक रहे। इस कारण उनके राग-स्वरूप को प्रचार से भिन्न और शुद्ध मानना ही तानसेन-वंशजों को स्वीकार था। मुस्लिम-सम्प्रदायों के रचनाकारों में तानसेन-वंशज सर्वमान्य हैं, जिन्होंने ध्रुवपद की शिक्षा शास्त्रीय रीति से प्राप्त की और सदा उसके अभ्यासी भी रहे। तानसेन ने भी स्वामी हरिदास के अतिरिक्त श्री विट्ठल विपुल एवं श्री गोविन्द स्वामी से भी संगीत की शिक्षा पायी थी। यह तानसेन के विषय में उनके संगीत-कला प्रेमी होने का बहुत बड़ा प्रमाण है। फिर भी अकबर की प्रशंसा में उन्होंने अनेक ध्रुवपद रचे तथा पीर-पैगम्बरों की प्रशंसा में कई ध्रुवपदों की रचना की। ये सभी ध्रुवपद मुझे दो-तीन गुरुओं की कृपा से प्राप्त हुए। बहुत से प्राचीन ध्रुवपद के आचार्यों की महान् कृतियां हैं जिन्हें प्रमाण रूप में ध्रुवपद की किसी भी श्रेणी में नहीं रखा जा सकता।

वस्तुत: शास्त्रीय दृष्टि से ध्रुवपद की शिक्षा सर्वोच्च है और उसकी मर्यादा को सुरक्षित रखना भी सांस्कृतिक दृष्टिकोण से अत्यन्त महत्वपूर्ण है। तानसेन के पुत्र विलास खां ने भी रचनाएं की हैं जो उपर्युक्त प्रामाणिक सीमा से बाहर हैं। मेरे विचार से रचनाओं में साहित्यिक एवं शाब्दिक अशुद्धियां, शब्दों के प्रति वैचारिक अनभिज्ञता व पिंगल और गण से अबोध होने के कारण गीतों में आरंभ हुयीं तथा बाद की रचनाएं, जो मुस्लिम संगीत-सम्प्रदाय के गायकों द्वारा की गयीं वे तो ध्रुवपद की शास्त्रपरक दृष्टि से सर्वथा अपरिचित ही रहीं। कालान्तर में गीत लिखना तथा उसमें अपने नाम का प्रयोग करना गायकों के बीच एक दुर्व्यसन के रूप में परम्परागत रोग के समान घर कर गया।

मुस्लिम संगीत-सम्प्रदाय के रचनाकारों को ध्यान में रखते हुए यदि ध्रुवपद की समीक्षा की जाय तो गीतकारों की संख्या अधिक होते हुए भी साहित्यिक संज्ञा से हीन होने के कारण शास्त्रीयता की दृष्टि से उनकी रचनाएं विचारणीय हैं। वास्तव में यह एक महत्वपूर्ण समस्या है कि उन गीतों को ध्रुव-पद की, संपूर्ण या अपूर्ण, किस श्रेणी में रखकर विवेचना की जाय ?

धमार-गायकी के क्षेत्र में 'ताज की धमार' बड़ी प्रसिद्ध है। ध्रुवपद-गायकों में धमार की शिक्षा अनिवार्य मानी जाती है। ताज को यदि हम व्यक्ति के रूप में पहचानना चाहें तो वह एक स्त्री है। बादशाह अकबर की पटरानियों में से एक का नाम ताज था। यह इतिहास-प्रसिद्ध श्रुति है कि ताज ने अपने एक विशेष भृत्य के द्वारा स्वामी हरिदास की चरण-धूलि मँगवाकर खा ली थी। तब से उन्हें नेत्रों के सामने साक्षात् कृष्ण की लीलाओं के दर्शन होते थे, जिसे

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

उन्होंने तालबद्ध गीतों के रूप में धमार ताल में गाया। 'ताज की धमार' धमार-गायकी की सर्वांगपूर्ण सर्वश्रेष्ठ कृति मानी जाती है। रागों की शुद्धता की दृष्टि से तो यह वर्तमान काल में कसौटी का काम कर रही है। ताज द्वारा रचित धमार-गीतों में से कुछ गीत ध्रुवपद-गायकों को प्राप्त हैं, उनमें गौड़-सारंग नामक रागिनी में 'वहुर डफ बाजन लागे री,' कामोद में 'मतवारो ठाड़ो बाट मा झूमत', दरबारी में 'मन्दर डफ बाजन लागे' तथा मधमाध में 'डफ की धकार' उल्लेखनीय हैं।

अनुसन्धान की दृष्टि से 'ताज की धमार' ध्रुवपद-गायकी में उतना ही श्रेष्ठ स्थान रखती है, जितना कि बैजू की धमार। किन्तु बैजू की धमार पुराने से पुराने गायकों के पास भी तीन-चार से अधिक प्राप्त नहीं हुई, सुनने में भी नहीं आयी। मरहूम दौलत खां, घसीट खां तथा राधाकान्त बनर्जी जैसे लोगों को बैजू के दस या पन्द्रह धमार प्राप्त थे। कई बार संगीत से अनभिज्ञ परन्तु तथा-कथित विद्वान् होने का दावा करनेवाले उच्च पदाधिकारी वर्ग के लोग संगीत विषय पर ऐतिहासिक प्रवचन एवं लेख प्रस्तुत करते समय इस प्रकार की भयंकर त्रुटियां करते हैं कि 'धमार-गायन बैजू से प्रसिद्ध हुआ और उसके निर्माता भी बैजू ही हैं'। किन्तु यह बात कहते या लिखते समय ऐसे विद्वान् (?) यह भूल जाते हैं, अथवा उन्हें इस तथ्य का ज्ञान नहीं है कि तालों की जो पांच जातियां निर्धारित की गयी हैं उनमें दूसरी जाति का उल्लेख धमार के रूप में किया गया है। अगर ग्रन्थों को ही प्रमाण मानें तो भी 'संगीत-रत्नाकर' में धमार-ताल का वर्णन मिलता है जिसका लघु-गुरु-काल यथावत् हैं। नाट्यशास्त्र सहित ध्रुव-प्रवन्धम् में भी पांच पंक्तियों के कई धमारों का उल्लेख किया जा चुका है। ऐसी स्थिति में धमार का श्रेय निर्माता-रूप में मानसिंह के किसी भी दरबारी गायक को देना शास्त्रीयता और इतिहास के प्रति यदि अनभिज्ञता सिद्ध करना नहीं है तो और क्या है?

मुस्लिम संगीत-सम्प्रदाय में महानाद सेन के ध्रुवपद बड़े कलापूर्ण हैं। यह तानसेन-वंश के ही व्यक्ति थे। छवि नायक सत्रहवीं शताब्दी के बड़े रचना-कारों में माने गये हैं। विष्णुपुर घराने में इनके अनेक अनमोल ध्रुवपद मिलते हैं। छवि नायक का सम्बन्ध श्रुतियों एवं किंवदन्तियों के आधार पर एक साथ तीन अलग-अलग स्थानों से जोड़ा गया है:

पहली अनुश्रुति के अनुसार, गोस्वामी कुल से परिचित एक विशेषज्ञ ने इन्हें हरिव्यासी-सम्प्रदाय से सम्बन्धित बताते हुए इनका निवास-स्थान जयपुर के अन्तर्गत ग्राम शेखावाटी प्रमाणित किया है। इस स्थान पर हमें एक पुस्तक देखने को मिली जिसमें छवि नायक के दो सौ से ऊपर ध्रुवपद-धमार संग्रहीत हैं। पुस्तक के प्रथम पृष्ठ पर लाल और काली स्याही से 'जय स्वामी हरिदास' लिखा

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

है। दूसरी अनुश्रुति के अनुसार, ममरेजपुर रियासत के एक मुसलमान गायक ने इन्हें मिर्जापुर का निवासी बताया। उनके अनुसार, वह स्वयं तथा वहां के राजा ठाकुर हरिवत्स सिंह दोनों ही बड़े मुहम्मद अली खां साहब रवाबिये के शिष्य थे। यह ठिकाना नैमिषारण्य क्षेत्र के समीप है। सीतापुर-हरदोई के नवाब नवाब अली तथा ठाकुर हरिवत्स सिंह ने मिलकर बड़े मुहम्मद अली खां को आश्रय प्रदान किया था। इस स्थान पर मुझे ठाकुर साहब से छवि नायक की कई रचनाएं सुनने को मिलीं। यह बात अवश्य है कि डुमरांव, चम्पारण, मधुबनी, तथा श्रीपुर के मलिकों को छवि नायक के अप्राप्य रागों में रचित अनेक ध्रुवपद-धमार याद हैं जिनमें से राज विजय कान्हरा का धमार 'काक किन किन संग जागे' बहुत ही सुन्दर रचना है। छवि नायक की बहुत-सी चीजें अघोर बाबू को भी याद थीं। ये चीजें उन्हें राधिका गोस्वामी द्वारा प्राप्त हुई थीं। छवि नायक के ध्रुवपदों के समान उनके धमारों की भी रचना है। मेरे विचार से छवि नायक गुवरहार व नवहार बानी के गायक थे। इनकी परम्परा मदनराय की है। मदन-राय, हरिदास स्वामी के सबसे छोटे शिष्य थे। किन्तु कला-विद्या में तानसेन ने इन्हें 'चतुर-दस-कलानिधि-नायक' माना था। यह जानकारी मुझे इनकी चीजों के साथ नजीरसेन जी से प्राप्त हुई। विषय-विवेचना को देखते हुए छवि नायक की रचनाएं मदनराय एवं तानसेन की कृतियों के अत्यधिक समीप हैं। किन्तु उनकी गढ़न और शब्दावली, अनुप्रास और छन्द रसिक अली की कृतियों से प्रभावित है।

मदन राय के ध्रुवपद-धमार प्रायः अप्राप्य हैं। इनकी कृतियों में श्लेष, अनुप्रास और गुप्त भावों की अभिव्यंजना क्लिष्ट शब्दावली में मिलती है। कान्हरदास के समान इन्होंने भी यमक तथा हरिगीतिका का प्रयोग अपने ध्रुवपदों में बड़ी श्रेष्ठ रीति से किया है। यह प्रयोग इन दो के अतिरिक्त किसी भी गायक की कृति में नहीं मिलते। ध्रुवपद की शास्त्रीय-शिक्षा की दृष्टि से हमें मदनराय और कान्हर प्रभू ऐसे अद्वितीय व्यक्ति प्रतीत होते हैं, जिनकी कृतियों की शिक्षा के बिना गायक ध्रुवपद-गायन के शास्त्रीय मार्ग तथा शास्त्रीय दृष्टि युक्त कला-क्रिया के विचारों से अनभिज्ञ रह जाता है। मदनराय की कृतियों का अनुकरण तानतरंग ने भी अपने ध्रुवपदों में किया है जिसमें मिश्री सिंह (नौबत खां), तथा बजीव खां बीनकारों का गहरा हाथ प्रतीत होता है। क्योंकि तानतरंग की रचनाओं में स्वरों के आभरणों से विभूषित कर जिस प्रकार क्रियाशील मर्मस्पर्शी सूक्ष्म गतियों का शब्दों के साथ दर्शन कराते हुए जिन श्रुतियों का विवेचन किया गया है, वह उनके पिता तानसेन की कृतियों में चतुर्थांश से अधिक प्राप्त नहीं होतीं। और यह बात तो प्रसिद्ध ही है कि इसी विशेषता के कारण तानसेन ने मिश्रीसिंह पर मुग्ध हो उन्हें अपनी कन्या दे दी थी।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

वैसे तो अनेक प्रकार के ध्रुवपद गुणीजनों के द्वारा रचित मिलते हैं और उनके विचारानुसार उत्तम भी हैं। किन्तु जहां तक ध्रुवपद की शिक्षा की शास्त्रीयता की दृष्टि से कसौटी पर कसने के बाद श्रेणी-निर्धारित करने का प्रश्न है, उनकी सम्यक् समीक्षा किया जाना आवश्यक है। केवल अन्ध-विश्वास और वात्रा-वाक्य के समान आंख बन्द करके स्वीकार कर लेना भारतीय दर्शन के विधान से अनुचित होगा। महानाद सेन की रचना भी शास्त्र-धर्म को बतलाने में लगभग तानतरंग सेन के समान है। विद्या-साधना के प्रति तानसेन-वंशजों की दृष्टि बड़ी ही गूढ़ है। ये लोग समय-समय पर वृन्दावन-निवासी सन्तजनों से, जो लोग संगीत-साहित्य के ये महान् साधक आचार्य और सुविचारी थे, अपने ज्ञान की वृद्धि करने में संलग्न रहे। तानसेन अपने समय में आमेर-नरेश के साथ कई बार आमेर आये थे। उन्होंने यहां के भगयत्-मन्दिर व देवी-मन्दिर का वर्णन करते हुए अनेक सुन्दर ध्रुवपद भी रचकर देवी-देवताओं को सुनाये। उनकी यह ध्रुवपद-रचना तो प्रसिद्ध ही है—'सघन बन छायो'। इसी प्रकार 'देवी परसाद दीजे' ध्रुवपद भी आमेर की ही देवी पर रचकर तानसेन ने गाया था।

तानसेन-वंशजों में से दो गायक और तीन तंतकार गुणियों के सम्पर्क में रहकर बहुत समय तक हमें साधना करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है। फिर भी प्रामाणिकता की दृष्टि से दुबारा मैंने शुभ-सम्वत् 2012, कृष्ण पक्ष की 13 (त्रयोदशी) को प्रातःकाल 11 बजे से जगन्नाथ जी मृदंगाचार्य से भी संशोधन करवाना आरम्भ किया। उपर्युक्त तिथि पर आप लगभग 90 वर्ष के हो चुके थे। आपने तानसेन-वंशजों में से अनेक के साथ पखावज-वादन किया है और बहुतों के आप साथी भी रह चुके हैं। सौजन्य और सत्यता के आप प्रतीक हैं। आपके पास मैं श्री बुध प्रवीण 'दूलह खां' के विषय में, जो तानसेन-वंश के एक सिद्ध-संगीतज्ञ थे, विशेष जानकारी प्राप्त करने की इच्छा से गया था। आपने बड़े प्रेम से मुझे सारा वृतान्त क्रमानुसार सुनाया और उसे लिखने की आज्ञा प्रदान की।

जयपुर शहर के निर्माता राजा जयसिंह के बाद उनके पुत्र ईश्वरसिंह गद्दी पर बैठे, जिनके द्वारा निर्मित 'ईश्वरी प्रताप विजय-स्तम्भ' आज भी दर्शनीय है। इनके बाद राजा माधवसिंह, तदुपरान्त उनके छोटे भाई राजा पृथ्वी सिंह गद्दी पर बैठे। इन्हीं के द्वारा सेनियों का निवास और प्रवेश जयपुर में हुआ। बुध प्रवीण को माता शारदा जी से साक्षात्कार प्राप्त हो चुका था। यह तथ्य उसी समय के बने हुए उस चित्र से ज्ञात हुआ जो मुझे कायमसेन ने सेनियों की हवेली में ले जाकर दिखलाया था। इस चित्र में माता शारदा जी हंस पर बैठी हुई आ रही हैं और बुधप्रवीण उनके आगे वीणा लेकर हाथ जोड़कर बैठे हुए सरस्वती की आराधना करते दिखाये गये हैं। इस चित्र को यदि कल्पना भी कहा जाय,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तो भी उस पर छिड़का गया चन्दन, जो उस आले में पूजा के निमित्त छिड़का गया होगा, तानसेन-वंशजों की आन्तरिक हिन्दुत्व-भावना का वास्तव में एक बहुत ही सबल प्रमाण उपस्थित करता है। बुधप्रवीण को यह सिद्धि किसी संन्यासी द्वारा प्राप्त हुई थी। इस कारण उसके प्रतीक रूप में वह सदैव भगवा रंग का साफा या पगड़ी पहना करते थे। यह प्रतीक भी उस चित्र में दृष्टव्य है।

कहते हैं, बुधप्रवीण ने वृन्दावन-निवासी श्री किशोरी अली का गायन सुनकर उनसे शिक्षा लेने की इच्छा प्रकट की थी। किशोरी अली स्वामी हरिदास की शिष्य-परम्परा में महापुरुष थे और श्री भगवत रसिक के द्वारा इन्हें गणेश जी की सिद्धि प्राप्त हुयी थी। अतः ये संगीत के अतिरिक्त अनेक विद्याओं के भी आचार्य थे। आप भगवत रसिक के समान साम्प्रदायिक रस-रहस्य की उपासना में बहुत ही बढ़े-चढ़े थे। आपका एक ध्रुवपद कुछ अल्प पंक्तियों में भावना की रस-लीला-पुष्टि हेतु प्रस्तुत कर रहा हूं। यह ध्रुवपद मंगल-भैरव में है—

राग : मंगल भैरव

मेरी महारानी श्री राधारानी।
जाके बल में सब तृन तोरी लाज कुलकानी।
भगवत रसिक अनन्य सहायक सर्वोपरि सुखदानी।
मेरी महारानी श्री राधारानी॥

यह ध्रुवपद हमें कायमसेन जी के द्वारा प्राप्त हुआ था।

अस्तु, बुधप्रवीण को किशोरी अली ने दीक्षा प्रदान करने के साथ-साथ गणेश जी की क्रिया-साधना भी करायी। इसलिए इन्होंने गणेश-मत के अनुसार 'स्वर-सागर' नामक एक ग्रन्थ लिखा जिसमें प्रत्येक राग को रागिनी के अतिरिक्त उस राग के पुत्र और उसकी भार्या का भी पूर्ण ज्ञान कराया गया है। स्वरूपों के अतिरिक्त इस ग्रन्थ में दिया हुआ नायिका-भेद, नायक-भेद, रागों के ऋतु-गान उनके गायन का समय और प्रकृति पर उनके प्रभावों का सुन्दर विश्लेषण भी किया गया है। स्वरों के भी बहुत-से स्वरूप इसमें दिये गए हैं। वैसे भी रचनाकारों में बुधप्रवीण श्रेष्ठ विद्वान् माने गये हैं। तानसेन-वंशजों में इनके समान कोई दूसरा नहीं हुआ। फिर भी ध्रुवपद-विषयक्-गीत-रचनाएं इन्होंने बहुत कम की हैं। इसी प्रकार धीरज प्रभु भी एक महान् रचनाकार हुए हैं। इनकी भी रचनाएं बहुत थोड़ी हैं।

राग-विधा की क्रिया और कला को जाननेवाली भारतीय जातियों में मलिकों को परम्परा भी काफी पुरानी है, परन्तु इसमें रचनाकार बहुत थोड़े ही

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

लोग हुए हैं। प्रायः इन लोगों के प्राचीन अनामिक ध्रुवपद ही मिलते हैं। धमार गाने की रीति इनमें प्रचलित नहीं है। देखा-देखी अब कुछ लोग गाने लगे हैं। कुछ पुराने मलिकों के सत्संग में मैंने धमार सुना था। उसकी बन्दिशें हमें सुर-सिंगार-वादकों की तरह मालूम पड़ीं। यह बंदिशें स्वरों के वितान से इतनी अधिक लिपटी और उलझी हुई होती हैं कि न तो उनमें किसी प्रकार से उठान किया जा सकता है; न उनमें की गयी उपजें ही अच्छी लगती हैं। वे तो स्वरों में इतनी सराबोर होती हैं कि उनके आगे किया गया 'रोम्-तोम्' भी व्यर्थ-सा ही लगता है। इस विषय पर मैंने कई बार पडरोना रियासत के गायक श्री रामप्रसाद मलिक और फूल मलिक से वार्ता की। ये लोग बड़े पुराने और इस विद्या के परम्परागत प्रमुख गुणी रहे हैं। रामप्रसाद मलिक का प्रभाव उस क्षेत्र में सम्माननीय है। कई बार आप लखनऊ आकर भी अपनी विद्या की प्रशंसा वृद्ध मुसलमान गुणियों से प्राप्त कर चुके हैं। धमार में उपज करने की पुरानी रीति बहुत-से लोगों को प्राप्त है। उनमें से एक यह भी थे। रूपमती की धमार, बैजू की धमार, हरिदास स्वामी की धमार, ताज की धमार, बच्चू मलिक की धमार—इन सब में राग, रस, रीति, भाव, भाषा, आदि गायन-शैली के अनुसार उपज करने की रीति में भेद है। इनके अतिरिक्त इसकी सूक्ष्मता का ज्ञान मात्र करामत खां में ही मैंने पाया है।

मलिकों में रचनाकारों की कमी क्यों है, इस विषय की जानकारी पाने के लिए मैं सन् 1937 में श्री राधाष्टमी के उत्सव पर अनेक गायकों के साथ पडरोना गया था। वार्त्तालाप के दौरान आपसे बहुत-सी-बातें मालूम हुयीं, जिनमें एक खास बात की चर्चा करते हुए श्री फूल मलिक ने बताया कि हम प्राचीन रीति के गायक हैं और उन लोगों से बढ़कर न कोई रचना कर सकता है, न किसी ने गुरु अथवा इष्ट के द्वारा विद्या की ही ख्याति प्राप्त की है, जिसकी रचना रसना पर रटी जाए। उन्होंने तर्क करते हुए पुराने गुणियों की क्रिया-कला की साधना का विवेचन और उसके द्वारा सिद्धि एवं प्रकृति पर उसके प्रभाव तथा भारतीयता की श्रेष्ठ सांस्कृतिकता का सामाजिक कार्य और कल्याणमयी भावना की घोषणा करते हुए कहा कि जब तक रचनाकार इन गुणों से युक्त नहीं होगा, उसकी रचना विज्ञजनों को ग्राह्य नहीं होगी, न उसका कोई प्रभाव होगा। उनके अनुसार डुमरांव-घराने के सर्वश्रेष्ठ संगीताचार्य बच्चू मलिक जी हुए हैं जिन्होंने गुरु-तत्व, और दैविक तत्व दोनों ही की प्राप्ति की थी। इस कारण उनकी रचनाएं रसना पर रटने-योग्य हैं।

रचनाकारों में श्री बच्चू मलिक से पूर्व समस्त भारत के संगीताचार्य विद्वानों में से किसी ने भी जिन्हें संगीत-कला का अधिनायक माना जाता था, सार्थक स्वर-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

गीत की रचना नहीं की। केवल बच्चू मलिक में ही यह अद्भुत प्रतिभा हमें देखने को मिली।

गीतों में नामकरण की प्रथा

जहां तक गीतों में नामकरण की प्रथा का सम्बन्ध है, इस दिशा में मदन नायक का नाम अग्रगण्य है। वैजू भी बड़े सूक्ष्म ढंग से नाम रखने में सफल हुए हैं। छबि नायक और धीरज के समान ही बच्चू मलिक ने भी नाम रखने में सफलता प्राप्त की। आमतौर पर इनके दो नाम मिलते हैं---एक तो घनारंग, दूसरा प्रकाश। घनारंग के नाम से व्रज-साहित्य के केवल कवि प्रसिद्ध हैं, जो बच्चू लाल से पहले हो चुके हैं। वस्तुतः यह घनारंग के रूप में मात्र एक संगीताचार्य हैं और इनकी रचनाएं भी कविता और काव्य के रूप में न होकर केवल संगीत-विषयक् प्रकाश के नाम से जो चीजें इन्होंने रची हैं, उनकी तुलना केवल वुधप्रवीण की रचनाओं से ही की जा सकती हैं।

राजा पृथ्वीसिंह के वाद उनके छोटे भाई प्रताप सिंह जयपुर की गद्दी पर वैठे। प्रतापसिंह वीरता के अतिरिक्त संगीत, साहित्य, ज्योतिष-शास्त्र, तंत्र-शास्त्र, अभिचार-विद्या आदि के महान् ज्ञाता और बड़े साधक थे। वुधप्रवीण इन्हीं के दरवारी संगीतज्ञों में से थे। वह प्रतापसिंह के वहुविध चतुर्मुखी ज्ञान से वेहद प्रभावित थे जिसका प्रमाण यह है कि वे राजा और अपना नाम एक साथ गीत में रखा करते थे। उदाहरणार्थ उनके द्वारा रचित ध्रुवपद की एक पंक्ति देखिए—

रीझवन कारण अति प्रवीण प्रतापशाह पालक सकल
वरण खट दर्शन निवास।

प्रस्तुत उद्धृत गीत की पंक्ति में प्रयुक्त नामों की सार्थकता दर्शनीय है। साथ ही यह पंक्ति रचनाकार के आश्रयदाता जयपुर-नरेश राजा प्रताप सिंह की योग्यता को प्रमाणित कर सकने में भी पूर्ण समर्थ है। ध्यान देने की बात है कि पंक्ति में प्रयुक्त शब्द 'अतिप्रवीण' में 'प्रवीण' नाम गीत के रचनाकार वुधप्रवीण का है, और 'प्रतापशाह' महाराज प्रताप सिंह के लिए है। यहीं पर वुधप्रवीण के नाम रखने की सार्थकता प्रमाणित होती है।

हम पहले कह चुके हैं कि बच्चू मलिक ने अपनी रचनाओं में 'घनारंग' और 'प्रकाश' दो नामों का प्रयोग किया हैं। जिन रचनाओं में 'घनारंग' नाम आया है, वे कुछ विशेष साहित्यिक व्याख्या के अनुकूल हैं, और 'प्रकाश' का नाम प्रायः ध्रुवपदों में प्रयुक्त हुआ है। वच्चू मलिक की रचनाओं को निम्न तीन वर्गों में विभाजित किया जा सकता है :

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

(1) साहित्यिक-गायन, जिसे हम प्राचीन छन्द-गान, अष्टपदीय अथवा षाडवपदीय-गायन भी कह सकते हैं।

(2) ध्रुवपद-गायन, और

(3) स्वर-साकार अथवा सार्थक गायन।

इन तीनों में यह तीसरा प्रकार ही ऐसा है जिसके कारण ही इन्हें श्रेष्ठ संगीतज्ञों के बीच सर्वोपरि स्थान प्राप्त हो सका है। वस्तुस्थिति तो यह है कि इनकी समता में किस रचनाकार को प्रमाणरूप में अथवा तुलनात्मक दृष्टि से चुना जाय, यह समझ में नहीं आता।

ध्रुवपद की शास्त्रीय-शिक्षण-परम्परा

स्पष्टतः ध्रुवपद में शास्त्रीयता का ही अधिक महत्व है। सार्वजनिक लोकचित्तनुरंजन के निमित्त ध्रुवपद का गायन कभी नहीं हुआ। कहना न होगा, ध्रुवपद-गायकों ने जैसे ही अपना ध्यान इस दिशा की ओर मोड़ा, कुछ ही समय वाद ध्रुवपद का गायन समाज से उठ गया। अतः ध्रुवपद के गायन को कभी भी अमर्यादित करके गाना समाज से ध्रुवपद के गायन को हटा देना ही है। शास्त्रीय दृष्टि से ध्रुवपद की शिक्षा को किस प्रकार और किन-किन लोगों ने पाया, इस विपय का विवेचन ही यहां अभीष्ट है।

ध्रुवपद में शास्त्रीय दृष्टि प्रदान करने वाले रचनाकारों में अनेक महापुरुप हो गये हैं, जिनमें सत्रहवीं और अठारवीं शताब्दी के रचनाकारों में छवि नायक और वच्चू मलिक ने अलभ्य वातों को क्रियात्मक रूप से सुलभ करके ध्रुवपदों में भर दिया है। वच्चू मलिक की रचनाएं ध्रुवपद की शास्त्रीय शिक्षा के क्षेत्र में अपने समकालीन गुणीजनों से लेकर वर्तमान एवं भविष्य के लोगों के लिए भी एक विशेष आकर्पण तथा चमत्कार की वस्तु वनी रहेंगी, ऐसी मेरी धारणा है।

ये लोग चिंतामणि मिश्र के वंशज कहलाते हैं और इनकी रचनाएं भी चिंतामणि मिश्र की कथित ध्रुवपद-रचनाओं के समान होती हैं। श्री चिंतामणि मिश्र को 'नाद-विनोद' ग्रन्थ में स्वामी हरिदास के शिष्यों में माना गया है। इनके पुत्र गदाधर मिश्र से पूर्वी क्षेत्र के अन्तर्गत वहुतों ने संगीत-शिक्षा भी ली थी। शहर के अतिरिक्त गांव के रहनेवाले ऐसे बहुत-से वृद्धजनों के मुंह से मैंने उन अद्भुत ध्रुवपदों को सुना और पाया है, जिन्होंने अपनी 80 वर्ष तक की उम्र में कभी भी रेलयात्रा नहीं की थी।

ग्वालियर के वावन वुवा ध्रुवपदीय इसी अंश के किसी गुणी के शिष्य थे, जिसकी कृपा से इन्हें मेघराज और भैरवराग की सिद्धि प्राप्त हुई थी, जो

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रकृति-जगत् पर स्वर-श्रुतियों के द्वारा अधिकार और प्रभाव को क्रियात्मक रूप में प्रकट करती थी। यह बात मैंने 1940 में सतभैया वैद्य से सुनी थी। उस समय वे 110 वर्ष के थे। उन्होंने श्री बावन बुवा से ध्रुवपद की शिक्षा भी ली थी। सतभैया लक्ष्मी गंगरामद्वारा के पास हमारे पड़ोस में ही रहा करते थे। ध्रुवपद के गायन द्वारा बावन बुवा का चमत्कार इन्होंने बहुत बार बताया था। उन्हें बावन बुवा के चमत्कार पर ताम्रपत्र एवं सम्मानयुक्त मठ भी प्राप्त हुआ है। श्री राजा भैया पूछवाले सन् 1946 में हमारे पास मथुरा पधारे थे। उस समय मैं इस बात को क्रमबद्ध रूप में लिख रहा था। कारण, हमारे उस्ताद हाफिज अली खां सरोजनवाज, गणेशी लाल ध्रुवपदीय के शिष्य हैं और इन्होंने गणेशी जी को स्वामी हरिदास का वंशज बताया था।

गणेशी चौबे इस विद्या में 'पृथ्वी के रत्न' थे। इन्हें दो राग एवं पांच रागिनियों की सिद्धि प्राप्त थी, जिसका प्रमाण देखने वाले बहुत-से लोग हमें मथुरा में मिले। श्री मक्खन जी सितारेहिन्द पखावजी उनमें से एक थे। मक्खन जी ने अपने जीवन में 92 वर्ष तक गणेशी चौबे को देखा-सुना था और उन्होंने चौबे जी को बावन बुवा का शागिर्द बतलाया था। इस उल्लेख का कारण उक्त तथ्यात्मक प्रमाण को पुष्ट करना मात्र है। इस विषय में राजा भैया ने हमें पूर्ण सहयोग दिया। उन्होंने उस घटना का विस्तारपूर्वक विवरण दिया जबकि गणेशी चौबे बावन बुवा की गुर-पूजा करने अपने भाई चुक्खा के साथ ग्वालियर आये थे। उन्होंने सतभैया के इस कथन की भी पुष्टि की कि बावन बुवा श्री चिन्तामणि मिश्र के वंशजों के शिष्य थे।

राजा भैया पूछवाले ने सर्वप्रथम् बावन बुवा की ही शिष्यता ग्रहण कर ध्रुवपद-गायकी की कला प्राप्त की थी। तदुपरान्त गृहस्थ-जीवन की आर्थिक-समस्या को सुगम बनाने के निमित्त उन्होंने ख्याल की शिक्षा लेकर उसमें सफलता प्राप्त की। राजा भैया पूछवाले ने आठ वर्ष तक बावन बुवा से तथा बाद में उनके बड़े लड़के लाला बुवा से भी शिक्षा ली थी, जिसके फलस्वरूप वह हमें ताल और लय की एक सजीव मूर्ति के रूप से प्रतीत हुए।

वस्तुतः ध्रुवपद की शिक्षा के बिना भारतीय राग-ताल का गायन सुनियमित रूप में किसी भी गायक को साध्य नहीं हो सकता, इस विषय पर राजा भैया ने कई बार अपने विचार प्रकट किये। स्वर, राग, ताल और गायन के साथ, भाव और भाषा-सहित, लय में शब्दों की गति जानने के लिए शास्त्रीय दृष्टि से ध्रुवपद की विधिवत् शिक्षा को उन्होंने बहुत ही आवश्यक बताया है। इस प्रकार उनका गायन परवत सिंह पखावजी के साथ मैंने कई बार दो-चार सेठों के घर सुना है। मिट्ठू भइया सेठ के यहाँ एकबार उन्होंने गायन के साथ

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

 CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

साथ ध्रुवपद की शास्त्रीय शिक्षा को भी वावन वुवा के अंग से सुनाया था। राजा भैया के गायन की एक विशेषता जिज्ञासुओं के लिए आवश्यक रूप से ध्यान देने और साधने के योग्य है। वह यह, कि जो स्वर-शब्द जिस मात्रे पर जिस भार के हों उनका उच्चारण मात्राओं के साथ स्वरों के दवाव और लयों की सांस में गुंथा होना चाहिए। इसी प्रकार अन्य सभी पंक्तियां भी एक साथ उसी सांस में उच्चरित हों, तभी उसे ध्रुवपद-गायन कहा जा सकता है। इस व्याख्या को वह जिस प्रकार कहते थे उससे कहीं अधिक सुचारु रूप में सुगठित और सुव्यवस्थित श्वासों में अदा करके दिखाते थे।

मेरी दृष्टि में इस प्रकार के गायन के लिए वहुत ही योग्य शिक्षक के अनुशासन की तथा साधन-काल में साधक के लिए काफी ध्यान देने की आवश्यकता होती है। साथ ही इस प्रकार से सुव्यवस्थित गायन करने में एक सभा में, एक गायक अधिक से अधिक तीन अथवा चार ही ध्रुवपद-धमार गा सकता है। उल्लेखनीय है, इस प्रकार की गायन-प्रणाली मलिकों में अवश्य थी और वे लोग इस रीति को इसी प्रकार जानते थे। प्रस्तुत घटना-प्रसंग से यह तथ्य स्वयं प्रमाणित हो जाता है—

एक़ बार प्रसिद्ध गायक अल्ताफ हुसैन खां ने कई गुणियों के आगे संगीत-चर्चा करते हुए ध्रुवपद-गायन के क्षेत्र में मलिकों की गायन-प्रणाली को अधिकारपूर्ण एवं प्रामाणिक वतलाकर उनके गायन की विशेषता की प्रशंसा की थी। प्रसंग था कि यदि विल्कुल सही रीति से उपर्युक्त ढंग पर ध्रुवपद पढ़ा जाय, तो उसमें शास्त्रीय मर्यादा का प्रतिपादन तो होता ही है, साथ ही कला का निखार भी इसी विशेषता में निहित है। अल्ताफ हुसैन का कहना था कि उस समय मेरी आयु 20-21 वर्ष थी, जब मैं दरभंगा रियासत के प्रसिद्ध गायक अजीम वख्श मौला वख्श को, जो 'पूरव के फाटक' कहलाते थे, सुनने गया। उस समय भैया लाल जी पखावजी 'संगत-रत्न' के साथ उनका गायन सुना, तदुपरान्त स्वयं मैंने भी थोड़ा गाया। दूसरे दिन हमारी आकांक्षा को जानकर भैया लाल ने कहा, 'चलो हम तुम्हें असली ध्रुवपद का गाना सुनवाते हैं'। निदान हम साथ हो लिए। सन्ध्या को हम लोग उस मलिक-गायक के घर गये और उनका गायन सुनने की इच्छा प्रकट की। उन्होंने तम्बूरा मिलाकर अपना गायन आरम्भ किया। भैयालाल जी पखावजी उनकी संगत कर रहे थे। अल्ताफ हुसैन का कहना था, पंडित जी वह वुड्ढा विल्कुल सीधा ध्रुवपद गा रहा था, जवकि भैयालाल जी इतनी अच्छी परन आसमान से उड़ाते हुए लाते थे और उसके ध्रुवपद की सम इतने वालभर से निकलती थी कि हर बार भैया लाल जी अलग जा गिरते थे। गायन समाप्त होने पर वह वोले, 'सुना तुमने ध्रुवपद! इसको

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कहते हैं, ध्रुवपद गाना और उसकी दम-सांस भरना। यह बात इन्हीं लोगों में है।' अल्ताफ हुसैन ने कहा कि मुझे बड़ा घमण्ड था, जो उसी दम पानी-पानी हो गया।

वस्तुतः ध्रुवपद-गायन की प्रणाली की साधना में जिन महापुरुषों ने कला की विलष्टता को ही लक्ष्य करके साधना की और समाज को उसकी क्लिष्टता दूर करके सरस रूप में सुनाया है, उनकी गाथा गायन के इतिहास में अग्रगण्य जनों में उल्लेखनीय रहेगी। इसी पथ के महान् साधक, जिन्हें इस पथ की सिद्धि प्राप्त थी, बावन बुवा थे। बावन बुवा के दूसरे गुरु-भाई पुत्तू पाण्डे थे, जो कानपुर जिले के निवासी थे। बावन बुवा के जीवन की घटनाओं में ध्रुवपद-विद्या की सिद्धि के अतिरिक्त कला-विद्या की एक-दो विशेषताएं मुझे ज्ञात हुई हैं, जिनमें से एक प्रसंग नीचे प्रस्तुत किया जा रहा है—यह प्रसंग ग्वालियर के प्रसिद्ध इतिहास में भी मिलता है :

एक बार हद्दू हस्सू खां ने जनकोजी राव की छवी में बड़े जोर से गाया। इसके बाद ही बावन बुवा का गायन था। हद्दू हस्सू खां ने सुखदेव सिंह पखावजी को कुछ चढ़ा दिया। इस पर उसने कहा, 'खां साहब, गाना तो आपका हो गया, अब 'बावन-तिरपन' होगा।' चूंकि बावन बुवा के नेत्रों में ज्योति नहीं थी, अतः उन्होंने अपने ज्येष्ठ पुत्र लाला बुवा से यह सुनकर पूछा कि 'बेटा, मुझे ऐसा कौन बोल रहा है?' इस पर उन्होंने हद्दू हस्सू खां के संकेत पर चलने वाले सुखदेव सिंह पखावजी का नाम बताया। वह खामोश हो गए। कुछ ही पल बाद उनका गायन आरम्भ हुआ। कहते हैं, सर्वप्रथम तो बावन बुवा ने इतनी विलम्बित में ऐसे दम-सांस खींचकर ध्रुवपद को गाया कि सुखदेव सिंह थपिया भी न भर सके। पुनः जीवा जी महाराज के कहने पर द्रुत का ध्रुवपद बावन बुवा ने आरम्भ किया और इतनी द्रुत लय में उन्होंने—'नाद मुरलीधर गोपी मनोहर बन-बन झूमत खेलत राधे'—सारंग के ध्रुवपद को गाया कि सुखदेव सिंह पुनः साथ न दे सके। इस पर हद्दू हस्सू खां ने व्यंग्य किया, 'वाह बुवा आज तो तुम पानी बरसा कर ही छोड़ोगे।' यह सुनकर बावन बुवा ने जवाब दिया, 'मैं कव्वाल और मिराशी थोड़े ही हूं—और पानी भी कोई ब्राह्मण गवैया ही बरसा सकता है, तुम नहीं। बैठो, आज मैं पानी बरसा के ही उठूंगा।' महाराज भी इस सांकेतिक शब्द को सुनकर बोले, 'हां-हां क्यों नहीं? आप ऐसे ही हैं।' इसके बाद गायन आरम्भ करने से पूर्व किसी मंत्र को उन्होंने स्वयं तम्बूरा लेकर गाया। तदुपरान्त जैसे-जैसे स्वरालापों से वह आह्वान करते गये, मेघ-राग की स्वर-श्रुतियों ने वायुमण्डल पर अपना प्रभाव प्रसारित करना आरम्भ कर दिया—और आश्चर्य! कि ध्रुवपद के उच्चारण से पूर्व ही वर्षा

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

आरम्भ हो गयी। कहते हैं, जीवा जी महाराज के साथ सभी लोग उस घोर वर्षा में बैठे रहे। गायन होता रहा। तम्बुओं से चू रहे पानी और पवन के झकोरों से लोग सराबोर हो उठे। बारिस होती रही। जब बावन बुवा ने चार ध्रुवपद गाने के बाद राग को विश्रान्ति दी, तब कुछ ही समय में वह घोर वर्षा भी बन्द हो गयी। इस चमत्कार को देखकर हद्दू हस्सू खां ने बावन बुवा के पैर पकड़ लिये। बोले, 'आप वाकई गन्धर्व हो।'

इस चमत्कारपूर्ण घटना के साक्षी रूप में जिन तीन प्रत्यक्षदर्शी व्यक्तियों से यह जानकारी प्राप्त हुई, वे हैं—सतभैया वैद्य जो बावन बुवा के शिष्य हैं और उस सभा में स्वयं उपस्थित थे। दूसरे, सुखदेव सिंह जी के सम्बन्धी एक व्यक्ति और तीसरे, नारंगी बाई मंदिर के जमादार शंकर राव, जो बहुत बूढ़े हो चुके थे और जिन्होंने इस प्रकार की घटनाओं व ऐतिहासिक प्रसंगों को तिथियों सहित अपने पास लिख रखा था।

ध्रुवपद-गीतों का रचनात्मक स्वरूप

ध्रुवपद की शिक्षा में शास्त्रीयता के क्रियाशील प्रत्यक्षीकरण को देखते हुए भारतीय गायन-कला की शास्त्रीय शिक्षा का महत्व बड़े ही ठोस और प्रामाणिक रूप में हमें प्राप्त होता है। ध्रुवपद की शास्त्रीय शिक्षा का जो प्रमाण-युक्त महत्व है, वह कला की क्रिया का बहुत बड़ा गौरव है। राजाभैया पूछवाले शब्दों और अक्षरों के चुनाव और उनके गुन्थन को मन्त्रों की श्रेणी में रखते थे। एक बार उन्होंने हमारी शंका के उत्तर में बहुत ही साधारण-सा उदाहरण देते हुए कहा कि आज के गायक स्वरों के स्थान तक को नहीं जानते—उसे जानकर साधना करने की बात तो बहुत दूर की है। स्वरों की जो श्रुतियां जिस अंश में जिस स्थान पर निश्चित और निर्धारित की गयी हैं, उनको उचित रूप से जाने बिना ठीक तरह से राग का स्वरूप, जो मात्र एक गायन के रूप में ही हो, वास्तविक रूप में नहीं बन पाता। फिर, जिन स्वर-श्रुतियों के अलंकारों को क्रमानुसार प्रदर्शित करने पर राग का स्वरूप निश्चित होता है उसे भी एक तो लोग जानना नहीं चाहते और दूसरे तर्क करते हैं कि प्रकृति-मण्डल पर राग का प्रभाव अमुक गवैये भी नहीं बतलाते। वस्तुतः इस प्रकार का प्रसिद्ध गायक लोक-चित्तानुरंजन के लिए राग की मर्यादा को तोड़कर श्रवणकारी अनुरंजनात्मक धुनों के आह्वान से केवल लोगों को प्रसन्न करता है, राग और उसकी मर्यादा केवल नाममात्र के लिए ही प्रदर्शित करता है। तात्पर्य यह, कि संगीत-विद्या की किंचित् कला भी तो आज के गायकों के पास नहीं है। ऐसी स्थिति में उसकी शास्त्रीय शिक्षा-साधना का विचार, उसकी वे आन्तरिक क्रियाएं, जिनके आधार

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पर नाद-विद्या को ब्रह्म-विद्या के रूप में प्रकृति-मण्डल पर अधिकार प्राप्त है, वह कैसे हस्तगत हो सकता है ?—यह कभी भी सम्भव नहीं है ।

ध्रुवपदों की शिक्षा के अन्तर्गत जिस प्रकार की रचनाओं को लेकर शास्त्रीय शिक्षण की दृष्टि से यह विचार किया गया है, उनमें शब्दों के महत्व के साथ-साथ सही ढंग से स्वरोच्चारण करते हुए श्रुति-अंशों को लेकर किस गति-विधि से रचना की जाय, अथवा रचना करने की जो रीति है, उसमें शास्त्रीय मर्यादा के सभी अंगों पर सदैव विचारयुक्त रखते हुए ही रचनाकार को अपनी रचना करनी चाहिए, अन्यथा रचनाएं अनर्गल होंगी और इस प्रकार की अनर्गल रचनाएं न तो शास्त्रीय कहला सकती हैं और न उनको सांस्कृतिक दृष्टि से कला की श्रेणी में रखना ही विद्वानों की सम्मति से उपयुक्त हो सकेगा—अर्थात् उनका शास्त्रीय व सांस्कृतिक दृष्टिकोण से कोई उपयोग नहीं सिद्ध हो सकेगा । वस्तुतः संगीत-परम्परा के महापुरुषों ने इस कला-विद्या को, जो अपनी रचनामूलक देन दी है, वह संगीत-कला के साधकों को साधना के पथ पर सदैव प्रकाश प्रदान करती रहेगी । ध्रुवपद की शास्त्रीय-शिक्षा के अन्तर्गत जो रचनाएं शास्त्र की कसौटी पर खरी उतर सकें, ऐसी ही रचनाएं तानसेन-वंशजों में तानतरंग, बाल सेन, सुखसेन, गंधर्वसेन, बुधप्रवीण और उनके समान प्रतिभा-सम्पन्न अन्तिम रचना-कारों ने सार्थकता को प्रमाणित करते हुए ध्रुवपद-शास्त्र को देन-स्वरूप प्रदान की हैं । मलिक-घराने में इतनी अधिक संख्या में रचनाकार नहीं हुए । ये लोग डक्कू चरजू, धोंधी, चंचल, सदा, गोपाल नायक, बैजू, जयदेव, विद्यापति और चण्डीदास की ही कृतियों को गाते रहे हैं ।

ध्रुवपद-गीतों की रचनात्मक कसौटी

प्राचीनता की दृष्टि से तथा ऐतिहासिक महत्व के गीतों की अच्छी संख्या उन पुराने स्वर-तालों के बन्धान में प्राप्त करने के लिए, जिस पर समस्त भारतीय सांस्कृतिक संगीत-कला की शास्त्रीयता की नींव और उसकी वृहत् रूपरेखा निश्चित है, यह आवश्यक है कि हम अतीत काल के ही स्वर-ताल बन्धानयुक्त गीत-गौरव का भलीप्रकार से अध्ययन करें, क्योंकि किसी भी देश की कला उस देश के ऐतिहासिक महत्व पर ही आधारित होती है । उसे छोड़कर नवीन रचना की परम्परा के अन्तर्गत किसी के भी द्वारा रची गई नई रचनाएं कला-विशेषज्ञों के द्वारा परख की कसौटी पर कसने के बाद ही सफल अथवा असफल रचनाओं की श्रेणी में रखी जा सकती हैं । यह ऐतिहासिक तथ्य है कि राज्याश्रय प्राप्त हो सके, इस कारण गायकों को प्रायः शास्त्रीय मतानुसार अमान्य बातें भी सिर झुकाकर स्वीकार करनी पड़ीं । यद्यपि कुछ विद्वानों ने

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ऐसी बातों को स्वीकार नहीं किया और वे स्वयं तो सत्-पथगामी रहे, परन्तु कालान्तर में भौतिक जीवन के संघर्षों से हारकर जीवन के सुख-दुःख से प्रभावित हो उनके भी वंशजों ने अन्ततः गायक-समाज में फैली हुई अमान्य बातों को दूसरों के लिए स्वीकार करके भविष्य के लिए उन अमान्य बातों का बोझ सभी के कन्धों पर लाद दिया।

शोध की दृष्टि से हम यहां पर पाठकों और जिज्ञासुओं को सभी बातों की सूचना शास्त्रीयता की दृष्टि से देना चाहते हैं, क्योंकि कसौटी की इस तुला पर जिसके जो भार निश्चित ठहरेंगे, वे सहज ही स्पष्ट होंगे।

शास्त्रीय शिक्षा की दृष्टि से रचना के तीन भेद हमने किये हैं जिनमें दो रचना-रूप पहले से ही थे और एक प्रच्छन्न था, जिनकी विशेष सफलता अठारहवीं शताब्दी के संगीताचार्य, डुमरांव राज्य के सम्माननीय गुणी, बच्चू मलिक को प्राप्त हुई। इस विषय में जो रचनाएं प्राप्त होती हैं, उनका स्रोत स्वामी हरिदास के प्रधान शिष्य, श्री रामदास चतुर्दश-कला संगीताधिनायक के गीतों में हमें मिलता है। तदुपरान्त मालवा के महाराज शोकासेन बीणाकार की रचनाओं में भी यह रूप प्राप्त होता है। नौबत खां के वंशजों में वजीद खां ने भी इस दिशा में प्रयास किया है, किन्तु वह प्रयास ध्रुवपद की श्रेणी में न उतरकर बीणा की लपेंट नामक बाज तक ही सीमित रहा—हालांकि वह गायन तो है ही और गुणी लोग भी उसे आदर से मानते हैं।

वैसे इस क्षेत्र में बुध-प्रवीण और बहादुर सेन ने अपने वंशजों से कहीं आगे बढ़कर सफलता पायी और वैचारिक दृष्टि से इसका मार्ग प्रशस्त किया। परन्तु इस क्षेत्र में जिस अलभ्य और असम्भव क्रिया को बच्चू मलिक ने कर दिखलाया वह वास्तव में प्रशंसनीय है—और सच तो यह है कि उनका यह कार्य अत्यन्त दुस्तर है। इस क्षेत्र में की गई बच्चू मलिक की रचनाओं से रामदास, बुध प्रवीण और बहादुर सेन, तीनों के ढंग का स्पष्टीकरण होता है। बहादुर सेन से श्री बच्चू मलिक चालीस वर्ष अवस्था में बड़े थे। अतः बच्चू मलिक ने इनकी रचना का अनुकरण किया हो, ऐसा लिखना सर्वथा अनुचित होगा, क्योंकि बच्चू मलिक के गीत जिन-जिन प्राचीन राग-छन्द और गीतों की छाया को बताते हैं उनका ज्ञान तानसेन-वंशजों में बहुत अल्प मात्रा में प्राप्त होता है। दक्षिण में संगीत के जो प्राचीन ग्रन्थ उपलब्ध हैं उनमें बच्चू मलिक के राग, स्वर और नाम के संकेत मिलते हैं, किन्तु दक्षिण में उन रागों के स्वरूप तथा छन्द-बन्धान शुब्रमण्य व पुरन्दर के अतिरिक्त अन्य लोगों की गीत-रचना में नहीं मिलते। प्राचीन आरभी, कोहली, तुरुष्क-तोड़ी, योगध्वनि, सरसांगी, परयंक, गोहली तथा हंस-ध्वनि के मार्ग में भी उनकी रचनाएं अपने पूर्वाचार्यों से भिन्न

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रतीत होती हैं, जिसकी रूपरेखा बच्चू मलिक के ध्रुवपदों में प्राप्त होती है। उदाहरण के लिए वर्तमान का अड़ाना एक रूपक ग्रहण करता है। प्राचीन काल में इसके दो भेद थे, जो हमारे समय में पुराने गायकों को याद थे। इसी प्रकार एक वीणाकार का देशकार भी है। बच्चू मलिक ने इसी देशकार को अपनाया है। देव-गन्धार में भी उन्होंने वीणाकारों की अनुकृति की है। यह देव-गन्धार दक्षिण के पुराने वीणाकारों को बजाते हुए मैंने सुना है, किन्तु उत्तर भारत में एक ही वीणाकार को यह याद है।

ध्रुवपद की जिस शास्त्रीय शिक्षा को ध्यान में रखते हुए हमने पुरानी शास्त्रीय रीति से गानेवाले और शिक्षा को प्राप्त करके व्यवहार में लानेवाले महापुरुषों की क्रियास्पद चर्चा द्वारा रचनाओं की शास्त्रीय शिक्षा की सत्यता को लेकर यह विचार प्रकट किया है, उसमें मात्र ध्रुवपद शिक्षा को ही हमने प्रामाणिक रूप से पाठकों एवं जिज्ञासुओं के समक्ष अपनी मान्यताओं को स्पष्ट करते हुए प्रस्तुत किया है। केवल जन-समाज द्वारा मान्यता पाए हुए अथवा किसी गण्यमान-अंग-विशेष के अधिकारी द्वारा किसी को, असत्य रूप में, मान्यता दिये जाने पर भी मैं उसे ध्रुवपद की शास्त्रीय विद्या का विद्वान् स्वीकार नहीं कर सकता। इसी कारण हमने स्थान-स्थान पर ध्रुवपद-गायन के शास्त्रीय शिक्षा-प्राप्त एवं क्रियाशील साधकों को ही उदाहरण रूप में अपनाया है, जिन्होंने शास्त्रीय रूप से स्वीकृत वास्तविक नियमों का पालन किया। रचनाकारों में भी मैंने उन्हीं व्यक्तियों को ग्रहण किया है और कला-विषय को लेकर जिज्ञासुओं के सम्मुख उन्हीं की चर्चा की है, जिनसे कला-विषय के अध्ययनशील, सत्पथगामियों को परख की सुलभ दृष्टि प्राप्त हो सके।

सच तो यह है कि शब्द-रचना के क्षेत्र में जिस प्रकार भारतीय वर्णमाला और व्याकरण के लिए महर्षि पाणिनि की अनुशासन-पद्धतिमूलक देन हमें कसौटी के रूप में प्राप्त है, उसी प्रकार भारतीय स्वर-रचना की परख हेतु कोई भी कसौटी हमें आज सुलभ नहीं है। इस कसौटी को जानने के लिए हमें प्राचीन कृतियों को किसी प्राचीनता के सेवी, गुणी व्यक्ति के पास स्वयं जाकर, सेवा-द्वारा प्राप्त करना होगा। तभी हम प्राचीन और विशुद्ध भारतीय सांस्कृतिक संगीत-कला की किसी विशेषता को प्राप्त कर सकते हैं, अन्यथा 'भिन्न रुचिर्हि लोकः' और स्वकल्प विवादस्पद रूप में तो सबने अपने को सिद्ध माना है।

स्वर-व्यवस्था के भेद

राग की स्वर-व्यवस्था के तीन भेद थे जिन्हें हम शास्त्रीय ध्रुवपद की दृष्टि से अध्ययन करना आवश्यक समझते हैं, तभी हम स्वयं को अथवा किसी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अन्य ध्रुवपद-गायक को शास्त्रीय रीति का गायक कह सकते हैं। यह बात सर्व-मान्य है कि ध्रुवपद-गान प्रबन्ध-गान के आठ भेदों में से केवल चार भेदों को ही प्रस्तुत करता है, फिर भी गायक को प्रबन्ध-गान से परिचित होना आवश्यक है। छन्द-गान के अंगों को, साहित्य ने ध्रुवपद-छन्द के भेद को, जो नाम संस्तुत किए हैं, स्वल्प रूप में ही ग्रहण किया और अब तो इसकी परम्परा ही ध्रुवपद-गायकों के बीच से उठ गयी। बच्चू मलिक ने कुछ छन्द-गान भी लिखे थे, जिन्हें वर्तमान गायक-समाज 'साहित्य-गान' अथवा 'काव्य-गान' कहता है। काव्य-गान के तीन भेद हैं, जिनसे आज का गायक-समाज परिचित नहीं है। इसी कारण यह भ्रम गायकों में देखने को मिलता है।

छन्द-गान संस्कृत में मिलता है, इसके जानकार साहित्यिक हैं। नव-स्व-रूपिणी, मालती, शार्दूल-विक्रत इत्यादि छन्द-गान के जो स्वरूप मिलते हैं उनके भी कई परम्परागत पण्डित-जन गायक हैं और वे छन्द-प्रबन्ध के मूल स्रोत सामवेद के अध्येता-गायक होते हैं। इन्हें संस्कृतज्ञों में 'वैदिक' कहा जाता है। ये लोग स्वर-कल्पना गायकों की रीति के अनुसार तो नहीं साधते, किन्तु वैदिक रीति से मुद्राओं के प्रमाण में गायकों से कहीं आगे बढ़कर प्रामाणिक रूप से श्रुतियों के अंश तक को ध्यानपूर्वक अनुसन्धानमूलक दृष्टि में रखते हैं।

दूसरी परम्परा छन्द-गान की भाषा के रूप में मिलती है। इसके दो विभेद हैं—इस परम्परा के पहले स्वरूप-भेद के अनुयायी इन्हीं वैदिकों में से राज्याश्रय पानेवाले वे पण्डितगण हैं जिन लोगों ने भाषा-साहित्य में छन्द-गान लिखे और गाये। इसी प्रथम रूप-भेद से सन्तों की परम्परा का आरम्भ हुआ, जिसके प्रतीक रूप में हितहरिवंश, सूरदास आदि के नाम प्रसिद्ध हैं। दूसरे स्वरूप-भेद के अनुयायी वे भाट, चारण, वारोट लोग तथा इन्हीं की जैसी तीन-चार जातियों के लोग हैं जो समाज से लेकर राजाओं के आश्रित कवि रहे हैं। इन लोगों ने समय-समय पर घटनामूलक कविताएं लिखीं और गायीं। इनमें से बहुतों ने केवल संगीत ही सीखा और उसके परम्परागत गायक भी रहे। वर्तमान मुस्लिम-परम्परा में ऐसी कई जातियां मिलती हैं।

तीसरी परम्परा के रूप में कविता का गायन हमें ग्रामीण भाषा में भी मिलता है। किन्तु हमारे शास्त्रीय-छन्द-गान के दो भेद उपर्युक्त दो परम्पराओं में ही निहित हैं। इन्हीं में से रागों की प्राचीनता के स्वरों को टटोलना पड़ता है। बच्चू मलिक ने तीनों ही प्रकार के छन्द लिखे हैं।

यह पहले ही कहा जा चुका है कि ध्रुवपद के स्वर-राग रचना-विषय के निर्णय हेतु प्रामाणिक रूप से स्वर का कोई भी व्याकरण अब तक न तो किसी ने निश्चित किया है और न मुझे प्राप्त हो सका है, फिर भी हमने इसकी तीन स्वरा-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

चलियां निर्धारित की हैं—इनमें प्रथम ध्रुवपदीयों के कण्ठ-गति की स्वरावली है। दूसरी वीणाकारों द्वारा रचित स्वरावली है, जो ध्रुवपद में निश्चित की गयी है। इन दोनों का पुराने सभी गुणियों ने अनुसन्धानपूर्वक अध्ययन किया था। इनके अतिरिक्त एक तीसरी स्वरावली स्वर-शृंगार तथा रवाव-वादकों की भी है। इस परम्परा में रवावियों की कृति के तराने यद्यपि वहुत प्रसिद्ध हैं, किन्तु इन लोगों ने कुछ धमारों और त्रिवटों की भी रचना की है। जिन लोगों से हमें इस प्रकार की रचनाएं प्राप्त हुयी हैं, उन लोगों को भी इसका ज्ञान केवल कर्ता के नाम से ही था, स्वरों की उस रचना-प्रणाली के अनुसार नहीं, जिसे यहां मैंने स्पष्ट रूप से श्रेणी के रूप में निर्धारित किया है।

इस विषय का पूर्ण ज्ञान उस्ताद गोविन्द पाठक को था, जो पहले ध्रुव-पदीय तथा स्वर-शृंगार-वादक थे और बाद में अपने मन से सितार बजाने लगे थे। यह छोटी राजवाड़ी के गुणी एवं स्वर्गवासी तानसेन-वंशजों के समान ही विद्वान् थे। इस विषय का ज्ञान मुझे एक ध्रुवपद-शोध के सिलसिले में प्राप्त हुआ था। इस ध्रुवपद को मैंने इनके सगे भांजे रामप्रसाद पांडे से, वहुत कुछ देने के वाद वड़ी सेवा करके प्राप्त किया था। श्री रामप्रसाद पांडे ने यद्यपि अपने सुयोग्य पिता से ही उसे प्राप्त किया था, तथापि वह भी गोविन्द पाठक का शिष्यत्व ग्रहण करने के वाद उनसे शिक्षा पाकर ही इसके मर्मज्ञ और विद्वान् माने गये। वह ध्रुवपद हिन्दोल राग में डक्कू की रचना है जिसमें उन्होंने राजा मानसिंह की किसी विशेष सांगीतिक सभा का वर्णन किया है। इसकी स्वर-कल्पना, मेरी दृष्टि में, वीणाकारों की शैली में है। पांडे जी की दृष्टि में, वह शैली ध्रुवपद-गायकों की ही शैली है। इसका निर्णय करने के लिए मैंने राम गोविन्द जी को एक पत्र लिखा, जिस पर उन्होंने इस शोध-कार्य की सराहना करते हुए स्वर-शृंगार-वादकों की स्वर-रचना-शैली के कई ध्रुवपद उदाहरण सहित हमें भेजे। साथ ही इस प्रकार की अन्य रचनाएं जिन लोगों से प्राप्त हो सकती थीं उनके नाम-पते भी भेजे। अस्तु, मैंने उस वस्तु को स्वर-रचना की श्रेणी और शैली में वर्गीकृत करके ध्रुवपद की शास्त्रीय शिक्षागत विशेषताओं को स्पष्ट करना उचित समझा।

महान् संगीतकारों का योगदान

रचनात्मक कलाओं में एक भिन्न शैली और भी है। यह कार्य तानसेन-वंशजों ने पुनः चालू किया, यद्यपि इसका क्रम विद्यापति के समय से ही चालू था। 'विद्यापति की पदावली' में यह वात दी गयी है कि 'विद्यापति जो गीत लिखते थे उसकी स्वर-रचना कत्थक जाति का एक गायक किया करता था, जिसको राजा

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

लक्ष्मण के दरबार की स्त्रियां, जो केवल गायक के लिए ही नियुक्त थीं, उस स्वर-ताल को याद करके दरबार में गाया करती थीं।'

परन्तु यह कथन असत्य और भ्रममूलक है। सबसे पहली बात तो यह कि उस समय कत्थक नाम की कोई भी जाति निश्चित नहीं की गयी थी। विद्यापति के गीतों के स्वर-बन्धान यदि कत्थकों द्वारा किये गये होते तो टप्पों की भांति कत्थकों में उनका भी प्रचार होता, जबकि सारे भारतवर्ष में कत्थकों के बीच विद्यापति का एक भी गीत सुनायी नहीं देता। अतः लेखक का उक्त कथन भ्रमोत्पादक है। दूसरे, बनारस के अतिरिक्त अन्य पूर्वी प्रदेशों में कत्थक जाति ढूंढे नहीं मिलती, बल्कि इसके स्थान पर अन्य पूर्वी प्रदेशों, जिलों और गांवों तक में हमें मलिक जाति मिलती है। इसके साथ ही जाति-भेद के अतिरिक्त सामाजिक कर्म-क्षेत्र में भी मलिक जाति भिन्नता लिए हुए है। इस जाति में केवल गायन और वीन, सुरसिंगार तथा पखावजवादनों की संज्ञा-शैली में ही हर स्थान पर प्राप्त होता है। यह प्रसंग इस तथ्य को और भी अधिक स्पष्ट करने में समर्थ है कि मलिकों में पूर्व काल से लेकर आज तक एक साधारण-सा नर्तक भी नहीं पाया गया है—और वस्तुतः नृत्य के विषय में ये लोग अक्षरशः शून्य हैं, जबकि कत्थकों में सदा से ही बड़े-बड़े इतिहास-प्रसिद्ध नर्तक होते आये हैं और आज भी हैं। उपर्युक्त प्रसंग से एक बात और भी स्पष्ट होती है जिस पर बेनी जी का ध्यान नहीं गया है, वह यह कि सूरदास के समान विद्यापति ने भी संगीत और साहित्य की पूर्ण सिद्धि प्राप्त की थी तथा साहित्य में संगीत के समन्वयन की यह परम्परा प्राचीन काल से भारतीय साहित्यिक-गीतकारों में चली आ रही थी। इससे वंचित रहनेवालों में एकमात्र गोस्वामी तुलसीदास ही हैं। फिर भी तुलसीदास कृत 'गीतावली' के गीतों को परम भक्त मनसुखा जी, जो पूर्व-जन्म में भगवान् श्री कृष्ण के सखा थे और गोस्वामी जी के समय में चित्रकूट के ही पास के एक गांव में जन्मे थे, संगीत के सुरों में ढालकर गाते थे तथा शब्दों को भी तद्नुकूल परिवर्तित कर देते थे। इसी कारण उसे 'गीतावली' कहा, और माना गया। किन्तु इनके अतिरिक्त प्रायः सभी गीतकार स्वरकार भी हुआ करते थे। गोस्वामी तुलसीदास और सूरदास के बहुत-से गीत ध्रुवपद की तीन विभिन्न श्रेणियों में आते हैं। रचनाकारों की जो तीन शैलियां क्रमानुसार मैंने निर्धारित की हैं, उनमें से एक संज्ञा-शैली केवल स्वरकारों की भी है। इसीलिए उपर्युक्त प्रसंग को समुचित रूप से प्रमाणों के साथ जिज्ञासुओं को समझाया गया है।

उल्लेखनीय है, इस क्षेत्र में सबसे पहले तानसेन-वंश के बालसेन जी ने ही पदार्पण किया। बालसेन जी भगवान् श्रीकृष्ण के परम भक्त थे और उनकी लीलाओं को गाने के लिए उन्होंने सूरदास की रचनाओं में से कुछ को चुनकर

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

उन्हें ध्रुवपद श्रेणी के गेय-काव्य पर प्रतिष्ठित करके गाया। उन्होंने उन गीतों में इतने उत्तम स्वर बिठाये कि वे गीत तानसेन-वंशजों की शास्त्रीय ध्रुवपद-शिक्षा में विशेष रूप से प्रतिष्ठित कर लिये गये। इस प्रकार की रचना दादा हैदरसेन ने भी की। उनकी कुछ रचनाएं मम्मू खां के द्वारा मरहूम उस्ताद करामत खां को मिली थीं। यह जानकारी मुझे उन्हीं से प्राप्त हुयी थी।

इस प्रकार की रचनाओं में जीवनशाह का भी महत्वपूर्ण योगदान है। किन्तु उन्होंने केवल हरिवंश-सम्प्रदाय के आचार्यों द्वारा रचित गीतों को ही अपनाया था। इनकी रचनाओं में विशेषता यह है कि उन रचनाओं में वीणा के कई अप्रचलित राग तथा वीणा के क्रम मिलते हैं। उन्होंने वृन्दावन दास के पदों तथा कान्हर प्रभु के ध्रुवपदों को अपने स्वरों में प्रतिष्ठित किया।

रीवां के महाराजाधिराज संगीत-साहित्य के परम भक्त चूड़ामणि श्री विश्वनाथ सिंह ने भी कई अपूर्व रचनाएं की हैं। इनके द्वारा गोस्वामी तुलसीदास के ही गीतों पर स्वर-बन्धान किया गया है। इनके गीतों की शिक्षा कई मुसलमान उस्तादों ने प्राप्त की। मुझे इनके गीत लेठवा-निवासी श्री राम किंकर दास तथा कुछ गीत छारा के प्रसिद्ध गुणी श्री लक्ष्मण दास मठियावाले के शिष्य रामसुहाग दास मृदंगी-गायक से प्राप्त हुए हैं। श्री लक्ष्मणदास आरा के प्रसिद्ध गुणी उस्ताद मरहूम तसद्दुक हुसैन खां धमारिये के इकलौते और पट्ट-शिष्य थे। उस्ताद तसद्दुक हुसैन खां के पिता वाजिदअली शाह के प्रतिष्ठित गायकों में से एक थे। गदर के बाद तसद्दुक हुसैन खां नेपाल-दरबार के गायकों में रहे। लेकिन बाद में वह किसी कारणवश वहां से आरा भाग आये थे। आरा शहर के प्रतिष्ठित लोगों में से लाडलीशरण मुख्तार ने इन्हें 30 रुपये माहवार देकर अपने पुत्र लक्ष्मणशरण को संगीत सिखलाने के लिए रोक लिया। खां साहब ने उन्हें अपनी सम्पूर्ण विद्या प्रदान की थी। रीवां-नरेश विश्वनाथ सिंह की रचनाओं में स्वर से अधिक ताल-बन्धानों की क्लिष्टता है।

कहना न होगा, गीतकारों में जिन नरेशों की कीर्ति भारतीय शास्त्रीय संगीत-कला में सर्वोपरि एवं श्रेष्ठतम रचनाओं के लिए मानी गयी है, उनमें पूर्वकालिक नरेशों के पश्चात् जिनकी स्वर-लिपियां हमारे समय तक सुनियमित रूप से गायकों के कण्ठों से प्रवाहित होती रही थीं, उनमें रीवां के महाराजाधिराज श्री विश्वनाथ सिंह एवं उनके पुत्र महाराजा रघुराज सिंह तथा उनके बाद बेतिया-नरेश महाराजा आनन्द किशोर तथा उनके छोटे भाई नवल किशोर की कीर्ति अक्षुण्ण है। इन दोनों के अतिरिक्त टोंक-निवासी नवाब इब्राहीम खां के भी ध्रुवपद-छन्द ध्रुवपद की शास्त्रीय शिक्षा के योग्य हैं—यद्यपि इनकी रचनाओं में राग के प्राचीन बन्धानों की अवहेलना मिलती है जिसे हम मुस्लिम

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रभाव से युक्त स्वर-शब्दों का गायन कहेंगे। गिद्धौर के महाराजा गुरु प्रसाद सिंह भी संगीत के क्षेत्र में केवल ध्रुवपद तथा विशेषकर वीन, सुरसिंगार और रवाब के श्रेष्ठतम गुणी माने जाते थे। परन्तु इन्होंने गीत-रचना नहीं की और तार-यन्त्र पर विशेष ध्यान दिया। कारण, इनके दरबार में बड़े मुहम्मद अली खां जैसे रबाविये, असद अली खां जैसे बीनकार और बासत अली खां जैसे सुर-सिंगार-वादक थे। इनके अतिरिक्त मुराद अली खां जैसे भारत-रत्न सरोदिये भी वहां आ जमे थे, जिनसे प्रभावित होकर राजा ने सरोद-वादन सीखा और जो गतें बांधी उनमें वीन, रवाब तथा सुरसिंगार के ढंग को भरकर अपने उस्ताद मुराद अली खां के योग्य शिष्य अब्दुल्ला खां को उन्हीं के सामने अपने बाज से हराकर अपना शार्गिद कर लिया। किन्तु अब्दुल्ला खां ने उनके सीखकर जो अपार धन और यश अर्जित किया, वह आज तक किसी भी सरोदवादक को पहले कभी नहीं प्राप्त हुआ था।

ध्रुवपद के समान इने-गिने उपर्युक्त वीणादि भारतीय वाद्यों की भी अपनी एक विशिष्ट रागाध्यायी मर्यादा और शैली है। इस विषय में सेनियों के अतिरिक्त लखनऊ-निवासी अब्दुल्ला खां के पौत्र (डालीगंज वाले) उस्ताद अमीर खां विद्या-रत्न से बहुत कुछ ज्ञान प्राप्त किया। अतः प्राचीन शास्त्रीय ध्रुवपद-संगीत की कई मर्यादाओं को तंतकारों ने गतों में बांध लिया और उसे पुराने तथा आज के लोग भी ध्रुवपद-अंग का बाज कहते, बजाते अथवा मानते हैं। महाराजा विश्वनाथ सिंह इस शास्त्रीय ध्रुवपद की शिक्षा के क्षेत्र में जो कुछ रचनाएं कर गए हैं, वह स्थान अन्य नरेन्द्र-संगीतज्ञों को तो दूर, अन्य किसी संगीत-व्यवसायी को भी कभी प्राप्त नहीं हो सका है।

पुराने गुणियों से कुछ ऐसी बातें हमने सुनी हैं जिनमें संगीत-कला-निधि मंशी मुहम्मद हुसैन खां का नाम देना आवश्यक प्रतीत होता है। यह नाच में अद्वितीय, लाला गुल्ला के पटशिष्य और तबले में मोधू खां के प्रधान शिष्य थे तथा उनकी सम्पूर्ण विद्या के ज्ञाता थे। ध्रुवपद-धमार के अतिरिक्त इन्होंने रहमत खां और मेंहदी हुसैन से आधुनिक प्रचलित गायन की अट्ठारह वर्ष तक शिक्षा ली थी। तबले के निर्माण-कार्य में इन्होंने हाजी साहब से 'मुंशी' की पदवी पायी थी और इस कार्य-क्षेत्र में यह सुशिक्षित भी बहुत थे। इस कारण प्रामाणिक सांगीतिक क्षेत्र में योग्यता-प्राप्त ऐसे गुणी व्यक्ति के वाक्यों को प्रमाण रूप में प्रस्तुत किया जाना उचित ही है। मुंशी जी ने महाराजा विश्वनाथ सिंह द्वारा रचित कई ध्रुवपद सुनाये अवश्य थे, परन्तु विश्वनाथ सिंह द्वारा रचित होरियां वास्तव में बेजोड़ हैं। शास्त्रीय विषय को लेकर संगीत में ताल के जिन दस प्राणों को आधार मानकर ताल की सारी मूर्ति बनायी गयी है, वह अत्यन्त

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सुन्दर रूप में इनके धमारों में पायी जाती है। ताल के मात्राकाल को दस प्राणों की सूक्ष्म लय के अवयवों में निहित करके शास्त्र ने अपनी मर्यादा निश्चित की है जिसे इन्होंने वर्णाक्षरों में निर्धारित कर, स्वरों की भी कालगति को इतने सुन्दर ढंग से निर्धारित किया है, कि उसे देखकर चकित रह जाना पड़ता है।

सुप्रसिद्ध धमार केदार के इस उदाहरण—'चोरी-चोरी मोसे खेलन'—की शब्द-विवेचना इन्हीं की है। इसी प्रकार मधमध सारंग 'डफ की धुमार बाजत' में लघुत्व की स्थापना गोपुच्छ गति का अनुशीलन करती है। हास-परिहास के भावों को लेकर विषम लय की, जिस गति को लय का शब्द-भाव देते हुए लंकादहन सारंग नामक राग में 'गुलाल रंग भरी किन डारो री मोरी आंखिन बीच' लिखकर पूर्ति की गयी है, वह वास्तव में दर्शनीय है। साहित्यिक दृष्टि से भी महाराजा विश्वनाथ सिंह ने कई अनमोल धमार रचे थे। जो गिने हुए कुल पांच अक्षरों में स्थायी की तीन पंक्तियों के अन्तर्गत केवल शब्दों द्वारा पांच आवृत्ति को लेकर पूरे होते हैं और उन्हीं पांच अक्षरों में अन्तरा भी तीन पंक्ति, शब्द तथा स्वरों के समेत सात पंक्तियों में छह आवृत्ति को लेकर पूरा किया गया है। ऐसी धमार-संज्ञक रचनाएं किसी अन्य रचनाकार की नहीं मिलती हैं। इसी को 'गोरखधन्धा' कहते हैं।

'गोरखधान्धा' नाम का दोहा अथवा साखी अपने मूल रूप में संगीत को गुरु गोरखनाथ की देन है। उसके बाद नीलाम्बर-पीताम्बर ने गोरखधन्धा के दोहे और साखियों पर मात्राकाल बिठाकर पांच-पांच परनें बनायीं, जिनका जोड़ उसके बाद किसी ने नहीं बनाया। ये दोनों भाई पखावज की मालत्रीय कल्पना के प्रधान आचार्य थे। इन्हें पखावजियों में नलकूबर का अवतार माना जाता है। इनका समय विद्वानों द्वारा विक्रम की ग्यारहवीं सदी से लेकर जयदेव तक निर्धारित किया जाता है, जिसका कोई ऐतिहासिक आधार नहीं है। परन्तु एक विशेष बात यह उल्लेखनीय है कि श्रीनाथ जी महाराज इन्हीं के वंश में हुए हैं, जो मृदंग-विद्या के महान् प्रवर्त्तक माने गये हैं। इनकी प्रशंसा में देवंकुशजी, दास जी और लाले भवानी ने कुछ प्रशस्तिमूलक परन बनाये हैं, जिनके अन्तिम चरण में यह पंक्ति मिलती है—

> अनहद नाद मृदंग प्रवर्तक तक्-तक्-धिगनक्-
> धिगनक्-तक्-तक्।

यह गोरखधन्धा-परन के रचयिता की प्रशस्ति की अन्तिम पंक्ति है।

रचनाओं में ताल की विशेषता को ध्रुवपद और धमारों में नियुक्त करने

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

वाले गुणीजनों में महाराजा विश्वनाथ सिंह की प्रतिष्ठा सर्वोपरि ठहरती है। इस मान्यता के दो मुख्य आधार यह हैं—मथुरा निवासी मृदंग-विद्या के सितारे-हिन्द पखावजी आचार्य मक्खन जी से जब मैंने उनके घराने की निकास और परनों को सीखना आरम्भ किया, तब श्री विश्वनाथ सिंह द्वारा रचित कई परनें भी उन्होंने मुझे बताईं। जब उनके द्वारा रचित कई चीजें उन्होंने सुनायीं, तब मैंने उनसे पूछा, 'उस्ताद, विश्वनाथ सिंह जी ने क्या सारी विद्या घोलकर पी ली थी?' उत्तर में उन्होंने कहा कि हम-तुम उनकी विद्या को समझ भी नहीं सकते हैं। स्वयं महाराज श्रीनाथ और भवानीदास ने मिलकर जब कुदऊ सिंह को तमाम परनों के साथ छह पड़ालों को भी बताकर तैयार कर दिया तो कहा, 'अब सिवा रीवांवाले महाराज विश्वनाथ सिंह जी के, देश भर का कोई भी दूसरा पखावजी तुम्हारा सामना नहीं कर सकता।' इस पर कुदऊ सिंह ने पूछा था, 'अब और क्या बाकी है जो विश्वनाथ सिंह को अधिक याद है?' इस प्रश्न को सुनकर दोनों महापुरुषों ने उत्तर दिया, कि 'कुल मिलाकर साढ़े बारह पड़ाल मृदंग-विद्या की हैं, जिसमें से छह पड़ाल हम लोगों ने तुम्हें बताये हैं, बाकी साढ़े छह पड़ाल विश्वनाथ सिंह के पास हैं। तुम चाहो तो उनसे सीख लो। नहीं तो, उनके सिवा तुम्हारे समान दूसरा और कोई नहीं है।' फिर भी कुदऊ सिंह ने महाराज विश्वनाथ सिंह का शिष्य बनकर सीखा और 'जगत्-विजयी' की पदवी प्राप्त की। यही कारण है कि विश्वनाथ सिंह का धमार अपना सानी नहीं रखता।

भारतीय संगीत की शास्त्रीय शिक्षा में राग, स्वर, श्रुति, लय, ताल, मात्रा और काल के अतिरिक्त भाव, भाषा, शब्द, शैली, छन्द और अनुप्रास आदि गुणों से युक्त गीत को ही शास्त्रीय ध्रुवपद-धमार की शिक्षा के लिए उत्तम माना जा सकता है। इनमें से जितने भी गुणों का रचना में अभाव होगा, स्वभावतः वह गीत अशास्त्रीय की श्रेणी में उतना ही नीचे की ओर धँसता चला जायेगा। इब्राहीम खां के कुछ गीत इसी प्रकार की अल्प तथा कई गीत सम्पूर्णतः इन त्रुटियों से युक्त हैं। इनकी चीजों को मैंने शेखावाटी स्थित सूरजगढ़ नामक रियासत के घरानेदार गुणी उस्ताद मरहूम जमाल खां सितारिये से सीखा था। इन्होंने दादा हैदरबख्श से भी दस-पांच चीजें याद की थीं जिनमें कई ध्रुवपद थे। जयपुर के गुणग्राही विद्वान् महाराज रामसिंह का स्वर्गवास होने के बाद उनके दरबार के बहुत-से गुणी कई राज्यों में चले गये थे। उनके दरबार में बीन-कारों की दो टोलियां थीं। इनमें से कुछ लोग खेतड़ी के विद्वान् राजा अजित-सिंह के आश्रय में आ गए, कुछ अलवर, टोंक, सूरजगढ़ आदि राजस्थानी रियासतों में ही रह गए तथा कुछ पूरब के बेतिया, गिद्धौर, नेपाल आदि राज्यों में चले गये। इनमें से रामपुर सेनियों का बड़ा अड्डा बना और ये लोग सीतापुर-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हरदोई के रईस ठाकुर नवाव अली और ममरेजपुर के हरिवंश सिंह के गुरु बन कर रहे। इस प्रकार शास्त्रीय गायन के विशारदों की रचनाओं की विशेषता को कुछ ऐतिहासिक कर्त्ताओं, उदाहरणमूलक गीतों तथा गुणियों के वाक्यों द्वारा प्रमाणित करते हुए जिज्ञासुओं के हितार्थ विश्लेपित करके मैंने यहां पर प्रस्तुत किया है।

यहां एक वात अवश्य ध्यान रखने योग्य है जिसे हमने रचना की तीन श्रेणियों में विभाजित कर रखा है—पहली श्रेणी केवल गायकों के ध्रुवपद की है; दूसरे स्तर पर वीणादि विशिष्ट भारतीय तार-वाद्यों के वादकों तथा गायकों की रचनाएं आती हैं; और तीसरी श्रेणी के अन्तर्गत ताल-विशेषज्ञों की रचनाएं आती हैं। उपर्युक्त दोनों श्रेणियों के महान् निष्णात् महाराज विश्वनाथ सिंह के साथ ही यह तीसरा विभाग भी अपनी विशेषता को लेकर यहां पूर्ण होता है। अव हम शास्त्रीय ध्रुवपद की शिक्षा और उसके अंगों की आनन्द किशोर-नवल किशोर की रचनाओं के आधार पर विवेचना करेंगे।

श्री आनन्द किशोर-नवल किशोर, महाराज वेतिया नरेश के दरबार में सुशोभित थे। उस समय वेतिया-दरवार सुसंस्कृत आलंकारिक एवं उत्कृष्ट भाव-भाषा के महान् गुणियों से सुसज्जित था। इन दोनों भाइयों की चीजें जिस प्रकार के विषयों को लेकर अवतरित हुईं, उनके समकक्ष एकमात्र केवल मलिक घराने को छोड़कर दूसरा कोई भी ठहर नहीं सका। यद्यपि आनन्द किशोर-नवल किशोर के पास अवशिष्ट तानसेन-वंशजों में प्रख्यात महान् विद्वान् प्यार खां तथा जाफर खां सगे भाई के समान रहते थे। ये दोनों तानसेन-वंश के अद्वितीय विद्वान् थे। प्रख्यात भारत-रत्न स्वर-सिंगार वाद्य के अपूर्व और अन्तिम वादनाचार्य बहादुर सेन अपने पिता के बाद इन्हीं के शिष्य थे। आनन्द किशोर-नवल किशोर ने प्यार खां और जाफर खां से भी तानसेन-वंश की गायन-प्रणाली सीखी थी। सरयू मलिक तथा अयोध्या मलिक, आनन्द किशोर-नवल किशोर के अतरंग और सिद्ध गुरु थे। जो गीत-रचना आनन्द किशोर-नवल किशोर ने की है, उसमें इन दोनों गायकों की गायन-प्रणाली की प्रधानता दृष्टव्य होती है।

प्रस्तुत प्रसंग में उल्लेखनीय है कि हम यहां ध्रुवपद की शास्त्रीय शिक्षा के अन्तर्गत स्वर और शब्दों की तीन श्रेणियों पर विचार करेंगे, जिसकी विशेषता को लेकर मैं ध्रुवपद को शास्त्रीय शिक्षा के योग्य निश्चित करना चाहता हूं। वे श्रेणीमूलक आधार निम्न हैं—

1. सुसंस्कृत साहित्यिक भाषाओं में ध्रुवपद गीत;
2. साधारण जन-समाज के व्यवहार की भाषा में ध्रुवपद गीत; और
3. असामाजिक और अशिक्षित भाषा के व्यावहारियों के ध्रुवपद गीत।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इसी प्रकार स्वरों की भी तीन श्रेणियां हैं—एक : शास्त्र की मर्यादा और ध्रुवपद में स्वर निश्चित करने की प्रणाली से सुशिक्षित जनों के स्वर-बन्धान। दूसरी : परम्परागत गानेवाले जो स्वेच्छानुसार अनुमान से ही ध्रुवपद की प्रणाली पर स्वर-बन्धान करते हैं। और तीसरी : वे संगीतज्ञ जो सभी प्रकार का गाना गाकर समाज के बीच कोई महत्वपूर्ण पद-स्थान पाने के कारण प्रमाद-वश ध्रुवपद-धमारों की रचना कर बैठे हैं। यही तीन श्रेणियां ध्रुवपद की शास्त्रीय-शिक्षा की कसौटी पर कसते हुए श्रेणी निर्धारित करने के लिए आवश्यक हैं। इनमें भी आनन्द किशोर-नवल किशोर की रचनाएं प्रथम श्रेणी में रखी जा सकती हैं।

वेतिया के समान मुक्तागाछा राज्य में मृदंग के महानतम् गुणियों की मण्डली थी। यहां पर मृदंग के विषय में ध्रुवपद के समान विचारपूर्ण रचनाएं संग्रहीत की गयी थीं। इस ग्रन्थ को एक राजकीय परिवार के अंतरंग व्यक्ति के पास हमें देखने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। इस हस्तलिखित पाण्डुलिपि में लगभग दो हजार से अधिक परनों का विश्लेषण सम्पूर्ण रीति से मृदंग-विद्या के अद्वितीय रत्न पं० मदनमोहन उपाध्याय ने स्वयं अपने हाथ से लिखा है। संगीत-विद्या में संगीत के आचार के साथ विचारलीला करनेवाले विचारशील साधक के रूप में गिने-चुने व्यक्ति ही हमें देखने-सुनने को मिले।

गीत-रचनाकारों में डुमरांव के महानतम् क्रियाशील गुणी बच्चू मलिक अप्रतिम कलाकार हो गये हैं। डुमरांव के समीप गया जिले के पवई, ईश्वरपुर, ब्रह्मपुर और अम्ता—ये चार गांव मलिक घराने के महान् संगीतज्ञों के प्राचीन-तम स्थान तथा जन्मदाता रहे हैं। इनमें से पवई गांव के घनारंग संगीत-क्षेत्र के एक महान् रचनाकार हुए हैं। दूसरे बांदा के नवाब अस्मत जंगबहादुर ने, जिन्हें इतिहास में अली बहादुर लिखा गया है, अपने संगीत-कला के प्रति असीम प्रेम और कठोर साधना के बल पर बांदा को संगीत-क्षेत्र के ख्याति-प्राप्त घरानों के बीच स्थान दिलाया। बाद में दतिया श्रेष्ठतम संगीतकारों का अखाड़ा बना और वर्त्तमान में यह स्थान पुरातन संगीत-कला की स्मृतियों का स्थान बनकर रह गया है। इसी प्रकार अन्य स्थान भी प्राचीन भारतीय आर्य संगीत की सांस्कृतिक कला के रचनाकारों के जन्मदाताओं की स्मृति-भूमि रहे हैं। अस्मत जंगबहादुर को कुदऊ सिंह, वीर उदयन कहा करते थे क्योंकि अस्मत जंगबहादुर वीणा पर ढाई प्रहर की चार दूनी बजाते थे। इसी प्रशंसा में वीर परनें रची गयी हैं जिसका कथा-विवरण स्वर्गीय पखावजी सितारेहिन्द ने उन परनों के साथ हमें प्रदान किया था। इन स्थानों के संगीतकारों की रचनाएं तानसेन-वंशजों के समान ही संगीत-रचना के क्षेत्र में आदरणीय हुईं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

डुमरांव के सुप्रसिद्ध संगीतकार बच्चू मलिक की रचनाएं कला के क्षेत्र में मदनराय की श्रेणी की हैं। किन्तु इन्होंने तीन प्रकार की जो रचनाएं की हैं उनमें से सार्थक स्वरगीत की रचना सम्भवतः इनसे पहले किसी ने नहीं की—यद्यपि इस विषय पर अन्य लोगों की रचनाएं, तलमण्डी से लेकर जयपुर और पूर्व में विष्णुपुर-घराने तक की भूमि में नौ वर्ष की अवधि में चार बार यात्रा करने और उस यात्रा में भी काफी भ्रमण तथा बड़ी छानबीन और प्रयत्न करने के बाद भी बहुत मुश्किल से मात्र तीन-चार स्वरगीत ही कुछ वृद्धों से मिल सके। साथ ही यह जानकारी भी मुझे उन लोगों से मिली कि वे सभी रचनाएं डुमरांव राज्य के गुरु-संगीताचार्य बच्चू मलिक से ही उन लोगों के गुरु-पिता सीखकर लाये थे। उन गीतों का ध्रुवपद में कितना ऊंचा स्थान है इसे प्रकट करने के लिए विशिष्ट शब्द भी लघु प्रतीत होते हैं।

इलियास द्वारा रचित कुछ ध्रुवपद तथा एक-दो त्रिवट और थे। ये सार्थक स्वरगीत इलियास के जामातृ के शिष्य और तलमण्डी घराने के एक ध्रुवपदिये पण्डित रामजी काश्मीरी से मुझे प्राप्त हुए। इलियास और इनायत अली ध्रुवपद के रचना-क्षेत्र में समाज और गुणियों के बीच यथोचित सम्मान प्राप्त कर चुके हैं। दोनों ही की रचनाएं ध्रुवपद की शास्त्रीय शिक्षा में उचित स्थान रखती हैं। इलियास स्वयं शरीर से ब्राह्मण और योग्य गायक थे, किन्तु अपने क्षेत्र में ख्याति पाने की लालसा से यह मुसलमान हो गये थे। इस कारण मुसलमानों ने भी इनका सादर मान किया।

इस प्रकार ध्रुवपद की शास्त्रीय शिक्षा की दृष्टि से किस प्रकार की किन-किन लोगों ने रचनाएं कीं और उनकी पृष्ठभूमिकाएं शास्त्रीयता की किन-किन प्रामाणिक कलाओं का आधार लिये हुए हैं, जिसके आधार पर हम उसे ध्रुवपद की शिक्षा का शास्त्रीय गीत स्वीकार करेंगे—इस तथ्य की सर्वांगीण विवेचना उपर्युक्त विवरण से पूर्णतः स्पष्ट हो जाती है। प्रायः प्रश्न उठता है, कि शास्त्रीय अंग की ध्रुवपद शिक्षा क्या है? बहुत-सी ऐसी रचनाएं हैं जिन्हें लोग ध्रुवपद कहते अथवा मानकर गाते हैं, परन्तु वे रचनाएं ध्रुवपद कही जाने के बाद भी शास्त्रीयता के अनुशासन में न होने के कारण ध्रुवपद नहीं कहला सकतीं। इसी तथ्य का विश्लेषण करते हुए प्रस्तुत व्याख्या के अन्तर्गत ऐतिहासिक संगीत और संगीतकारों की मूल बातों और शिक्षा का क्रम, रचना के अंग उनकी स्वल्प चर्चाओं के साथ दिया गया है ताकि पाठकों को सर्वांगीण ज्ञान प्राप्त हो सके।

पूर्व में रचना के क्षेत्र को लेकर स्वर-सन्दर्भ की स्थापना करते हुए महापुरुषों की साहित्यिक गीत-रचनाओं पर जो विस्तृत व्याख्या की गयी है,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

उसमें रीवां के विश्नाथ सिंह, तानतरंग, बालसेन, सुखसेन, तथा हैदरसेन की रचनाएं हैं। कालपी घराने के मूल प्रख्यात गुणी साहब जी ने भी जो तानसेन-वंश से सम्बन्धित होकर भी वृन्दावन में फकीरी लेकर रहते थे और श्री बिहारी जी के परम भक्त थे, भगवत रसिक तथा मोहनी अली तटी सम्प्रदाय की रचनाओं पर स्वर-स्थापना की, जिसमें से गोपी खां के द्वारा तानसेन-वंशजों ने बहुत-से ध्रुवपद याद किये। कालपी घराने में तो ये ध्रुवपद रहे ही। मद्दे खां और मम्मू खां, जो कालपी छोड़कर गदर के समय जहानाबाद के खजूर गांव में जा बसे थे उनके द्वारा भी व्रज-साहित्य की गूढ़ रचनाएँ जो साहब खां द्वारा की गयी थीं, उधर के कई मुस्लिम संगीतज्ञों में फैलीं। इस वंश के हमारे समय के गुणी, जिनसे मैंने ध्रुवपद-विद्या की कुछ झलक प्राप्त की, वह उस्ताद काले खां थे। आपका शरीर 78 वर्ष की अवस्था में सन् 1940-41 के बीच छूटा। आपकी संगत हमने विशेष रूप से सन् 1936 से पायी। इनके द्वारा शब्द दूसरों के और स्वर गायकों के, इस विषय पर उपर्युक्त ज्ञान प्राप्त हुआ।

श्रीकृष्ण-चरित्र के अतिरिक्त भगवान् श्रीराम की महिमा भी अनेक ध्रुवपदों में गायी गयी है, किन्तु नामोल्लेख न होने के कारण उनके रचयिता को जानना कठिन है। इस घराने के रामपरक ध्रुवपद तानसेन की रचनाओं से मिलते-जुलते हैं, और कई दार तो अपने को तानसेन की रचनाओं से भी अति श्रेष्ठ स्तर के प्रमाणित करते हैं। इन रचनाओं को काले खां जी ने कामता मलिक नामक नेपाल के वृद्ध गुणी से सीखकर लिखा था। कामता मलिक ने अपनी ध्रुवपद-गायकी से नेपाल के महाराज चन्द शमशेर जंगबहादुर को बहुत अधिक प्रभावित किया था। इसके उपलक्ष्य में उन्हें बहुत-सा धन और धरती दी गयी थी।

मलिक घराने के रचनाकारों में घनारंग, बच्चू मलिक और उनकी शिष्य-परम्परा में अमता गांव-निवासी छितिपाल ने विद्वानों के बीच बड़ा आदर पाया। छितिपाल ने भी गीतावली, विनय-पत्रिका और रामलला नहछू के गेय पदों की रचना की है। सुही, जुही, कुरंग, बहुली, सभावती, हेमा, चित्राजी, पदचंचली, कौस्तुभ, देवगंधार, त्रिवेणी, श्यामनाट, मनोहरी, कुमारिका तथा हर्ष जैसी अलभ्य, अति-प्राचीन अनेक दुष्प्राप्य रागिनियों में स्वर-रचना की है। ये रचनाएं छितिपाल के शिष्य तथा उनके ज्येष्ठ पुत्र लालजी बाबू के द्वारा शिक्षा-प्राप्त महात्मा महावीरदास त्यागी द्वारा हमें प्राप्त हुई। इस सन्त को छन्दगान की शिक्षा चित्रकुटी बाबा के द्वारा प्राप्त हुई थी। श्री चित्रकुटी, महामना पं० मदन मोहन मालवीय के आदरणीय शिक्षकों में से एक थे और शिक्षापन से ही संन्यास लेकर एक त्यागी के रूप में तीर्थवास करते थे। अस्तु, स्वर-रचना के क्षेत्र में इतने ही

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

गुणीजनों के विषय में हमें जानकारी प्राप्त हो सकी, जिसे प्रस्तुत प्रकरण के अन्तर्गत जिज्ञासुओं के समक्ष रखा गया है।

गायकों के अतिरिक्त विशारदों में से तानसेन के वंशजों प्यार खां और बहादुर सेन ने भी उपयुक्त रीति का अनुसरण किया था, जिसके विषय में स्वर-कल्पना की तीसरी धारा की विषय-विवेचना करते समय संकेत किया गया है। अस्तु, ध्रुवपद की शास्त्रीय शिक्षा में जिन बातों की प्रधानता होती है, उनसे सम्बन्धित विचारों की यहां पर सर्वांगीण विवेचना सहित स्थापना की गयी है, जो हमारे संगीत का मूल आधार हैं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सातवां प्रकरण

गेय गीतों के उदाहरण

इस प्रकरण में कुछ गेय गीतों के उदाहरण, उनके भाव, भाषा, शैली तथा उन रचनाओं के देनेवाले गुरुजन, उनके सिद्धान्त, उनका जीवन-परिचय तथा उनके द्वारा रचा गया गीत-काव्य, रचयिताओं का इतिहास, जहां तक हमें समग्र कला का ज्ञान है, उनके स्थान पर पहुंचने का और उनके द्वारा संगीत के विषय में ध्रुवपद के उदाहरणों में गेय चीजों को देते हुए, व्यक्ति का परिचय भी यथा-साध्य जो कुछ परम्परा है, उसे स्पष्ट रूप से बतलाने का प्रयास किया जायेगा।

बच्चू मलिक का एक गीत उदाहरणस्वरूप प्रस्तुत किया जा रहा है। गीत के दाता घरानेदार गायक हैं। आपकी परम्परा, मलिक घराने की परम्पराओं में एक प्रसिद्ध गुणी घराने की मानी जाती है। इनकी परम्परा के ध्रुवपदिये जवजतन मलिक, बच्चू मलिक के प्रधान शिष्यों में से एक बड़े ध्रुवपदज्ञ थे। इनकी वंश-परम्परा में शिवजतन मलिक राजतन मलिक तथा पदार्थ मलिक जैसे गुणी हुए हैं। पदार्थ मलिक के पुत्र रामदास मलिक से मुझे यह गीत प्राप्त हुआ। आप एक ख्याति-प्राप्त गायक हैं और यह सम्मान आपको महान् गायकों से प्राप्त हो चुका है। गीत इस प्रकार है—

सँवलिया आज धरि पायो री आजु खेलें होरी।
ब्रज की लुगाई हरि ठाईं बहुराई पुनी।
पिक स्वर नाईं गाईं होरी॥
छबि दरसाईं सुख पाईं इत उत धाईं।
रंग बरसाईं चहुँ ओरी॥

बजत ताल मृदंग पखावज ढोलक दारा जोरी।
जलतरंग करकाल बीन रव मुरली डफ टंकोरी॥
चंग उपंग मृदंग संग लय रंग जंग उमगो री।
दंग अनंग त्रिभंग लखि तान तरंग बढ़ो री॥

छवि छलकत छिन छिपे छपाकर
छूटत छहर पिचकारी।
छैल छबीले छल नंदन ते लिन्हीं छीन छलोरी।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कोउ चसके हँसके गहिके कहे रंग कसके अँखियों री।
डफ धमकत तन चमकत गमगत झमकत रंग चहुँ ओरी।
रमकत पवन दसन दुति दमकत छमकत छमछम गोरी।
पिय अरचित चंदन तन चरचित कोउ चितवत पिय ओरी।

कोउ खुरचित बदला उदार चित कोउ कर चितवन चोरी।
कोउ थिरकी शिरकी फिरकी सी कोउ भिरकी बरजोरी।
कोउ खिरकी मगभाग बचावत कोउ घिरकी रंग दोरी।
पट खींचत कोउ रंग उलीचत कोउ नीचे निरखो री।
कोऊ किचे निचे भई जीचे कहरी चे ठहरो री॥

कोउ गोरि थोरि गोरि दिन की निपट छोरी।
वलो निवी कसी बाँधी डोरी।
रोरी भरी झोरी दौरी किरती किशोरी।
ओरी नखशिख सारी सरबोरी॥

छवि निरखत हरखत सुर बरखत सुर दरखत कुसुमोरी।
कोउ निरखत मुखवच आ गरखत कहे सरखत लिख दो री।
कर झटकत कहुँ कुमकुम चटकत लटकत लट भई भोरी।
कोउ गोरी हटकत कोउ भटकत कोउ छटकत मुख मोरी॥

कोउ बाँटत बादाम छुहारा कोउ बाँटत पानोरी॥
कोउ साँटत पिय को लय उर में कोउ चाटत अधरो री।
प्रिय पाहीं जाहीं मुसकाहीं लपटाहीं तनसोरी।
'घनारंग' के राधामाधव अपनी भक्ति दियो री॥

यह वही गीत है जिसके विषय में पटना युनिवीर्सिटी के वाइस-चांसलर श्री सच्चिदानन्द सिन्हा ने मलिक-घराने की प्रशंसा पर लेख लिखा था। किन्तु इस गीत के लिए, गायक के ही कण्ठ में होने के कारण, मुझे आठ सौ रुपये भेंट करने पड़े थे। गीत के साथ-साथ गायक की परम्परा, गीत का महत्व, रचना-काल और गीत की विशेषताएं भी मुझे प्राप्त हुयीं, परन्तु गीत कठिन साध्य रहा। प्रस्तुत गीत छन्द-गान है तथा शब्दानुप्रास, व्यंजना, अभिव्यक्ति आदि काव्य-सौष्ठव की सम्पूर्ण कलाओं से सुसज्जित है। छन्दगान की यही विशेषता रही है। छन्द-गान के विषय में यथाक्रम बातें पहले ही बतायी जा चुकी हैं। इसके तीन क्रम मुख्य हैं, जिन्हें सांगीतिक कलाविदों ने साध्य किया। अष्टपदी,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

षोड्सपदी तथा पंचपदी—यही तीन क्रम ध्रुवपदज्ञों ने अपनाये हैं। अष्टपदी प्रसिद्ध है। षोड्सपदी में से एक अप्राप्य रचना ऊपर दी गयी है। अब एक पंच-पदी देखें। यह छन्द-गान संस्कृत में है और महात्मा महावीरदास त्यागी जी की कृपा से, जो छितिपाल मलिक ध्रुवपदिये के शिष्य हैं तथा जिन्होंने छन्द-गान की शिक्षा वेद-विद्या-वाचस्पति चित्रकुटी बावा के द्वारा प्राप्त की है, मुझे प्राप्त हो सका है। प्रस्तुत छन्द रागिनी पट चंचली में है—

पंचपदी
रागिनी : पट चंचली

चस्च चंद्रमरीच कान्ति चपला शोभत गं सुन्दरम् जानक्यावदनं रघुत्तम मुखांचालोकयन्तिमवरम्। कस्तूरी तिलका लकाव्रतमुखी मीषत्स्मिताजाव्नसा-म्वीणावादन तत्परां सुरसिकैर्वन्देऽनिसंभाविनिम्॥ हे श्री चन्द्रकले कलासुकुशले विज्ञान-ज्ञान प्रदे सितारामे सुभक्ति नीर निभरांकल्लोलिनीन्तां भजे। यावत्त्वत्पद पंकजाश्रिति रजोनैवाश्रिताः पंडितास्ताव्द्राम प्रिया कटाक्ष लतिकाछायांलभन्ते-नकिम्॥

महात्मा श्री महावीरप्रसाद जी त्यागी से हमारा सम्पर्क सन् 1936 में हुआ था, किन्तु विद्या-विषय का आदान-प्रदान सन् 1936 से आरम्भ हुआ। त्यागी जी को छन्द-गान और ध्रुवपद-गान दोनों ही का समुचित ज्ञान है। ध्रुवपद के आलाप-भेद में मैंने इन्हें वीणा से सम्बधित कुछ बातें बतायीं और इन्होंने हमें कुछ छन्द और कुछ ध्रुवपद बताये। उपर्युक्त छन्द की प्राप्ति मुझे 5 मई, 1957 को हुई। इसी समय आपकी शिक्षा के विषय में कुछ जानकारी मैंने प्राप्त कर ली थी।

त्यागी जी से प्राप्त जानकारी के अनुसार छितिपाल जी जब मिथिला में रत्नसागर के महन्त भगवानदास परमहंस के पास आते थे तभी उनसे यह ध्रुवपद-विद्या सीखते थे। छन्द-गान की शिक्षा इन्हें बहुत पूर्व चित्रकुटी बावा से मिल चुकी थी। छितिपाल जी के अतिरिक्त उनके ज्येष्ठ एवं सुयोग्य पुत्र लाल बाबू से ध्रुवपद-गायन में इन्होंने ताल-प्रबन्ध की शिक्षा ली थी। रत्नसागर के परमहंस एक सिद्ध पुरुष थे। उन्हें गाने का बहुत शौक था। इस कारण बहुत दूर-दूर से गायक उन्हें अपना गायन सुनाने आया करते थे और परमहंस जी गायन सुनकर अपनी सिद्धि के माध्यम से बहुत-सा धन उपहार-स्वरूप देते थे। इस कारण कोई भी गायक निस्संकोच भाव से उनके पास आता था। त्यागी जी ने यह चीज जिस समय हमें सिखाई थी उस समय इनकी अवस्था 65 वर्ष की हो चुकी थी।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

उल्लेखनीय है कि छन्द-गान मार्गीय संगीत में प्रधान है। इस कारण तालों के मार्गीय विवेचन की कुछ अभिव्यक्ति दी जाती है जैसे कि ध्रुवमार्ग चित्रमार्ग, वार्तिक मार्ग और दक्षिणी मार्ग। इसके अतिरिक्त कुछ ऐसे मार्ग भी हैं—जैसे दक्षिणी-वार्तिक, चित्र और ध्रुव आदि—जिनमें केवल लय का ही भेद है तथा जिनकी सारी कला लघु, काल आदि पर ही नियत है। अमुक अक्षर, अमुक निश्चित काल के लय प्रकरण तक ही कहने की आज्ञा है। इसी प्रकार छन्द-गान के संगतिकार मृदंगी को भी इन मार्गों का ज्ञान होना परमावश्यक है। कोई भी मृदंगी प्रत्येक छन्द-गान के साथ नहीं बजा सकता। वैसे वर्तमान में तो जिन लोगों को इस विषय का लेशमात्र भी ज्ञान नहीं है, वे भी ग्रन्थों के श्लोकों के आधार पर दूसरों की सहायता से, अथवा स्वयं, अर्थ का अनर्थ करके, किसी श्लोक को कुछ विकृत स्वरों में गाकर छन्द-गान से अनभिज्ञ लोगों पर अनेक प्रकार से अपना महत्व और प्रभाव बढ़ाने की धृष्टता करते हैं। छन्द-गान की संगत का वास्तविक मर्म जाननेवालों में स्वर्गीय उस्ताद मक्खन जी पखावजी सितारेहिन्द का नाम सर्वोपरि ठहरता है। इस विषय पर एक बार मथुरा स्थित श्री किशोरीरमण के मंदिर में उन्होंने मेरे एक छन्द-गान पर बड़े अच्छे ढंग से संगत की और कहा, 'यह दक्षिण मार्गीय हुआ।' दूसरे दिन उन्होंने हमारी शिक्षा के समय उदारतापूर्वक छन्द-गान की संगत की और बहुत-सी विद्या बतलाते हुए लिखवा दी। यह विद्या उन्होंने पं० मदनमोहन उपाध्याय मृदंगाचार्य के शिष्य होकर आठ वर्ष तक अघोर बाबू ध्रुवपदीय की सहायता से प्राप्त की थी।

वस्तुतः छन्दगान में उस प्रकार से बोल और परन नहीं लगाये जाते, जैसे कि हम ध्रुवपद-धमार में देखते और सुनते हैं। छन्द और प्रबन्ध में इनके भी गीत-भेद हैं जिन्हें संगीत रत्नाकर में लिखा गया है किन्तु मेरा अभिप्राय गीतों से ही नहीं होता। मैं तो उसे क्रियासिद्ध व्यक्ति द्वारा स्वयं सुनकर और कुछ सीखने के बाद ही उसके अनुकूल किसी ग्रन्थकार के प्रमाण को पढ़ने की चेष्टा रखता हूं, केवल वाक्यों में क्रियात्मक कला-विद्या की प्रदर्शित-विद्या को मैंने अच्छे-से-अच्छे ग्रन्थों के वचनशील और उसके मर्मज्ञ कहलानेवाले लोगों को प्राचीन ग्रन्थों के अनुसार बहुत-सी वस्तु सुनाने पर भी, वे उसे समझाने में तब तक अनभिज्ञ रहे जब तक कि वस्तु के विवेचन को उन्हें बतलाया नहीं गया। यहां पर मैं किसी व्यक्ति-विशेष का नाम नहीं लेना चाहता, परन्तु एक चर्चा के दौरान यमक का ध्रुव-प्रबन्ध मुंशी महम्मद हुसैन के सम्मुख शास्त्रीय-गायन की योग्यता रखनेवाले एक व्यक्ति को सुनाया गया था। उनकी इच्छानुसार उस ध्रुव-प्रबन्ध को कई बार सम्पूर्णतः गाया गया, किन्तु वे उसकी किसी भी बात

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

को न समझ सके। इसीलिए मैं जिज्ञासुओं को इस सिद्धान्त पर दृढ़ करना चाहता हूं कि क्रियात्मक कलाओं में संगीत अपनी अतिसूक्ष्म गति को दृष्टा गुरु, ज्ञान और साधना पर ही दृढ़ है, जैसे पुस्तक में लिखे हुए किसी भी स्वर को गुरु के कण्ठ से दर्शाये विना उसके स्थान को महामर्मज्ञ ग्रन्थपाटी भी नहीं प्राप्त कर सकता है। वुध प्रवीण ने एक ध्रुवपद में कहा भी है—

तव मैं जानू वाको बड़ो ज्ञान,
जो कंठ से दिखलावे गंधार स्वर को निषादमान।

तात्पर्य यह, कि वुध प्रवीण जैसे महान् शास्त्रज्ञ ने भी क्रिया को ही महत्व दिया है। ऊपर हमने जिज्ञासुओं के हितार्थ जो दो गान-भेद वस्तु के रूप में दिये हैं, उनमें से एक भाषा का है, दूसरा संस्कृत का। दूसरा छन्द आलवारों के 'दिव्य-प्रबन्धम्' के अनुकरण पर है। संस्कृत-गीत वेदपाठियों में पहले से प्रचलित थे। अतएव रचनाकार का समय-काल अतीत की गोद में है। गीत-रचना के निमित्त भाषा के चार भेद मुख्य रूप से भरतमुनि ने भी माने हैं, जिन्हें मागधी, अर्ध-मागधी, पृथुला और वहुला कहा गया है। इसके अतिरिक्त छन्दों के वहुत-से प्रकारों में भी उपर्युक्त चार प्रकार भरत-मत के भाषा-गीत के अन्तर्गत आते हैं।

ध्रुवपदज्ञों में जयमुन पाठक नामक एक महान् ध्रुवपदीय नेपाल के महाराजा चन्द्र शमशेर जंगवहादुर के दरवार में थे, जिन्हें गौड़ी, भिन्ना और वेसरा के भी ध्रुवपद याद थे। जयमुन पाठक और ध्रुव-प्रवन्ध, गुरुजनों के सिद्धान्त, उनकी जीवनी तथा उनके कथन ध्रुवपदों के अवान्तर उदाहरणों में यही व्यक्ति समुचित रूप से वस्तु के विषय में विवेचना के योग्य है। आपके शिष्यों में अद्वितीय प्रसिद्धि पानेवाले कलकत्ते के विश्वनाथराव धमारिये हुए हैं। जयमुन पाठक के कई धमार-ध्रुवपद प्यार खां ने भी याद किये थे। आपके विषय में हमें लगभग अट्ठारह ध्रुव-प्रवन्धों की प्राप्ति के साथ कई लोगों से जीवनी मिली, जिनमें आरा के घरानेदार वयोवृद्ध श्री रामप्रताप मलिक से हमारा प्रथम परिचय सन् 1944 में हुआ था, किन्तु काफी प्रयत्नों के वाद आपसे 28 अप्रैल, 1957 को जयमुन पाठक की कुछ चीजें प्राप्त हुईं। रामप्रताप जी ध्रुवपदीये हैं। आपके पूर्वजों में हरिसहाय मलिक, हरिशरण मलिक, हरिप्रसाद मलिक गिद्धौर के प्रख्यात ध्रुवपदिये रह चुके हैं। जयमुन पाठक की अवस्था उस समय 73 वर्ष की हो चुकी थी, जवकि श्री रामप्रताप के पिता उन्हें सत्रह वर्ष की आयु में जयमुन पाठक के पास संगीत की उच्च शिक्षा सीखने के लिए छोड़ आये थे। जयमुन पाठक, गुलम्मू खां के आग्रह पर, जो प्यार खां के मामू लगते थे, नेपाल-दरबार में गायक रहे थे। इन्हें किसी विशेष सांगीतिक उत्सव पर नेपाल-नरेश श्री चन्द्र

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

शमशेर जंगबहादुर ने 'प्रिय प्रवीण कलाधर' की उपाधि बहुत-से द्रव्य और भूमि के साथ प्रदान की थी। पाठक जी की कुछ चीजें, जिन्हें हम ध्रुवप्रबन्ध कहना चाहेंगे, तथा उक्त इतिहास-वृत्त हमें रामप्रताप जी ने तब प्रदान किया जबकि उनकी आयु 62 वर्ष से अधिक हो चुकी थी। ध्रुवपद-रचना के विषय में अर्थ की प्रधानता के साथ यहां पर उनके कुछ ध्रुवपद भाषा-ज्ञान के लिए और गुरुजनों के सिद्धान्त के साथ उदाहरण-रूप में प्रस्तुत किये जा रहे हैं—

ध्रुवप्रबन्ध : विभिन्न तालों में

स्थायी—

शंकर हर हर वरदाता महेश्वर भोला दिगम्बर।
गिरिजापति गंगाधरन कैलाश सुख करुनानिधान ।। 1 ।।

अंतरा—

पंच-वदन पचराग सर्वप्रथम उक्ति किनी।
आडव षाडव संपूरन ताल तान सुर प्रभान गान ।। 2 ।।

संचारी—

प्रथम राग भैरव निज दरसायो द्वितीय मालकौंश।
सुरमुनि मोहे महा मातु माया भवानी बखानी ।। 3 ।।

आभोग—

राग हिंदोल वढ़ आयो मेघ उमड़-घुमड़ आनंद बरसायो।
श्री रागसिद्धि दीनी पंचम दीपक बैजू या विधि सब सुख पायो ।। 4 ।।

इस प्रकार आचार्यों की रचना में संगीत-विद्या की भाव-भूमि के अन्तर्गत नाद के महत्व को कला के क्षेत्र में दर्शाने की क्षमता रखनेवाले और गुरुजनों के सिद्धान्तों को स्पष्टीकरण करनेवाले ध्रुवपदों का उद्धरण देना ही इस प्रकरण का मूल विषय है। एक और उदाहरण प्रस्तुत है जिससे उनके जीवन-इतिहास एवं उनके कथन तथा सिद्धान्त की हम उन्हीं के वाक्यों से प्रामाणिक रूप में शिक्षा ग्रहण कर सकते हैं—

ध्रुवप्रबन्ध

स्थायी—

नाद समुद्र को पार न पायो अनरथ गुणी कहायो।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अन्तरा—

आदि ब्रह्म महावेद उचारो देव न देव प्रथम ओम्कार गायो।

संचारी—

अनेक सृष्टि विरंची उपजायो सारंग बोर आयो।
सरस्वती डूबन ते डरी तब ही द्वय तूंब धार्‌यो॥

भरत, मतंग, कल्लिनाथ, हनुमत् सात अध्याय लखायो।
गीत, छन्द, ध्रुवपद देसी मारग दो विधि बतायो।
सप्त दांडी गुप्त प्रगट लिये नायक गोपाल नाम धरायो।
बैजू के साथ जो बूड़े सप्त सुरन, तान, आन पाखान पिघलायो॥

इन ध्रुवपदों और प्रबन्धों में गुरुजनों के ध्रुवपद की गान-कला से सम्बन्धित सिद्धान्तों के साथ-साथ उनकी जीवनी और कला का गुण-प्रभाव भी स्पष्ट हुआ है, जिस पर हमारे ध्रुवपद का महत्वपूर्ण इतिहास गौरव के साथ सांस ले रहा है, ध्रुवपद की भाव-भाषा के भेद-प्रभेदों को पिछले प्रसंगों में पूर्ण रूप से दर्शाया गया है। धमारों में भी गुरुओं के सिद्धान्त उनके गेय पदों में प्राप्त होते हैं। जैसे—

उपज पें उपज परत रंग भीनी।

इसी प्रकार के और भी अनेक धमार हैं—

स्थायी—

अहो तुम गावो तीकी होरी,
सुर संगति सों अनोखी लेत तान नई गुरुन के मत की।

अन्तरा—

अक्षर नीके जुगति अनूठी तान ताल साँचे गति की॥

कहा जाता है कि इसका स्थायी मिश्री सिंह को तानसेन ने संकेत करके गाया था। तत्क्षण मिश्री सिंह ने वीणा बजाते हुए अन्तरा गाना आरंभ कर दिया और यह धमार सुरों के, शब्दों के, अक्षरों के अनुशासन के शास्त्रीय प्रमाण के रूप में धमार-गायन के ताल-विषय को लेकर आज तक तानसेन-वंशजों की शिक्षा में अनुशासित ढंग से गायन करने की दिशा में शास्त्रीय दृष्टि प्रदान करने में सदैव समर्थ रहा है। इस धमार से हमें शास्त्रीय अंग की गायन-प्रणाली की अनुशासनबद्ध शिक्षा का इतने बड़े यशस्वी पुरुषों द्वारा प्रदत्त अधिकार और

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

आज्ञा के अनुसार चलने की भूमिका का ठोस प्रमाण उन्हीं के द्वारा कहे गये प्रामाणिक शब्दों में गीत-काव्य के रूप में, जो स्वर-तालों में सजीव है, प्राप्त होता है।

धमारों में रचयिता ने अपने नाम नहीं दिये हैं जिसे कि हम सांगीतिक भाषा में 'छाप' कहते हैं। यद्यपि छाप में विश्वास करने के कारण कई बार अशिक्षित और धन-यश के भूखे तथा समाज में चाटुकारिता के द्वारा ख्याति पाने वाले कुछेक अल्प गीत-प्राप्त गायक अविश्वास पैदा करने में पूर्ण सफल हुए हैं। इसका कारण खुले शब्दों में यह है कि वही ध्रुवपद अगर किसी स्थान पर कोई गायक तानसेन का नाम लगाकर गाता है तो दूसरे स्थान पर दूसरा गायक उसे किसी अन्य के नाम से गाता है। अतएव किसी रचना के शब्दों को रचनाकार की भाव-भाषा, क्रिया और शैली की दृष्टि से शोध की कसौटी पर कसना ऐसी स्थिति में बहुत कठिन हो जायेगा; क्योंकि केवल छाप पर विश्वास नहीं किया जा सकता। विश्वास का एक और मूल है कि परम्परागत साधन के द्वारा, जो सब प्रकार से योग्य हों, प्राप्त गीतों पर हम गीत में आये हुए छाप के आधार पर अवश्य विश्वास करेंगे। अनामिक धमारों को पहचान सकने की सूक्ष्म दृष्टि पाठकों को प्राप्त हो, इसी हेतु प्रस्तुत प्रसंग में स्वल्प चर्चा की गयी है तथा ध्रुवपद और धमारों का उदाहरण देकर गुरुजनों का सिद्धान्त उन्हीं के कथन में में दिया गया है। उदाहरणस्वरूप उद्धृत किए गए धमार में 'लेत तान गुरुन के मत की' कहा गया है। इस कथन के अनुसार जिसे तान माना गया है वह आगे उन्हीं के कथन में प्रमाणित है, 'अक्षर नीके जुगति अनूठी तान-ताल साँचे गति की।' अतएव प्रस्तुत धमार में सम्पूर्णतः तान की व्याख्या कर दी गयी है, ताकि 'तान' शब्द को समझने में कोई भूल न हो। साथ ही शब्दों के लिए भी संकेत किया गया है, 'अक्षर नीके' अर्थात ऐसे-वैसे असामाजिक व प्रमाद भरे अश्लील अक्षर न हों, बल्कि वे अक्षर युक्तिपूर्ण हों। यहां काव्य-ग्रन्थ के अनुशासन का संकेत है कि अक्षरों की युक्ति कहां से प्राप्त होती है। फिर मनमाने या कानों को रुचिकर लगने वाले, ऐसे-वैसे स्वरों की गति को अक्षरों में बिठा देने-मात्र से वह गुरुजन के मत से स्वीकृत नहीं होगा। इसीलिए गुरु के विषय में कहा है, 'ताल साँचे गति की'। इस प्रकार यह प्रतिबन्धित किया गया है।

आजकल कुछ वर्षों से आधुनिक गायक 'फिकरेबंदी' जिसे 'फिरकत' भी कहते हैं, को भूलकर 'फिकरे' की जगह तान शब्द को बोलने लग गये हैं। किन्तु उन्हें यह ज्ञात नहीं है कि तान केवल ध्रुवपद और धमारों में ही होते हैं, अन्य गीतों में नहीं। इसी प्रकार प्राचीन गीत-प्रणाली को गानेवाले तथा उसके अनुशासन से अपरिचित गायक प्रमादवश धमार को 'धरमार' कहते

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हैं और उसके आन्तरिक अर्थ को व्यक्त करते हुए बड़े गौरव और विश्वास के साथ गाते हैं। वस्तुतः यह उनका मिथ्या भ्रम है जो गायन को विषाक्त रूप प्रदान करता है। यहां हमें किसी ख्याति-प्राप्त गायक अथवा उसकी परम्परा में विश्वास करने की कोई आवश्यकता नहीं है बल्कि हमें तो विश्वास करना है उन महा-पुरुषों पर, जिनकी रचनाएं भारतीय संगीत की प्राचीनता और शास्त्रीयता की सांस्कृतिक मर्यादा को बतलाती हैं। उन्हीं गुरुजनों का सिद्धान्त हमें उनके ध्रुवपद और धमारों के उदाहरण से उन्हीं के शब्दों में जानना और गाना है। कहा भी गया है—

महाजनो येन गतः स पन्था।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

आठवां प्रकरण

लेखक का निजी विचार

इस प्रकरण में केवल हमारे अपने विचारों का ही निचोड़ है। पुस्तक-लेखन में लेखक अथवा ग्रन्थकारों के मत को लेकर सदा से यह प्रचलित रहा है। पुराने ग्रन्थों में आदि ही में ऐसा हुआ है और उसे ही ध्यान दिलाने हेतु पुनरावृति के रूप में उसी पर ग्रन्थकर्त्ताओं ने समग्र ग्रन्थ का अथ-इति किया है। वर्त्तमान में भी पुस्तक-लेखन में यह परम्परा इस प्रकार के तथ्यों को लेकर आवश्यक रूप से दी जाती है ताकि लेखक और विचारक ने किस आधार पर इतने शोध के बाद स्वयं को कहां सत्य ठहराकर समाज के उस विषय के रसिकों को अपने द्वारा ज्ञानोदधि के मंथन से कौन-सी वस्तु प्रदान की, इन्हीं बातों को लेकर उपोद्घात, निज मत, मेरे विचार आदि शीर्षकों के अंतर्गत लिखते हुए वे पाये जाते हैं तथा इसके दिये बिना ग्रन्थ मान्य नहीं किये जाते, जो वस्तुतः सत्य भी है। अतः इस प्रकरण का अथ-इति इस लेखक द्वारा इस प्रकार से है।

भारतीय संगीत और इसका प्रतिनिधित्व करनेवाले ध्रुवपद गीत पर मेरे कुछ विचार हैं। ध्रुवपद गीत इसकी गायकी नामवाचक संज्ञा से अशिक्षितों को भी इस शब्द का अर्थ अचलता की सूचना देता है। परन्तु आश्चर्य है कि इसके गायक जो आडम्बरों से लदे परम्परा की श्रेष्ठता अपने नाम के पीछे दोहाई से फैलाते हैं, सदा ही उसके तथ्य से सर्वथा दूर रहते हैं। लोक-चितानुरंजन की आड़ में इस गीत की विद्या-कला को भुलाते हुए मात्र अपनी अनभिज्ञता का ही वे परिचय देते हैं और व्यर्थ की ख्याति पाते हुए फूले नहीं समाते।

हमारे अपने विचारों का विषय यह है कि स्वर के प्रयोग से स्वनामवाची राग दूसरे का रूप धारण कर लेता है। इतना ही नहीं, यदि उन्हीं स्वरों के वादी-संवादी तद्नुकूलता में ही परिवर्तित हो जायें तो ही राग-स्वरूप स्वनामवाची न होकर दूसरे की सीमा ग्रहण कर लेता है और इससे भी अधिक गहराई में जाकर देखें, तो उन्हीं राग-स्वरों में केवल उसके अपने विश्रांति के अतिरिक्त किसी दूसरे स्वर पर थोड़ा-सा रुकने मात्र से अन्य राग की छाप ग्रहण कर लेता है और विज्ञ गायकों की दृष्टि में प्रस्तुतकर्ता गायक मूर्ख ठहरता ही है, किन्तु कला-विधा पर श्रम करनेवाले मात्र संगीत के श्रोतांजनों को भी उत्तम गायक के ज्ञान-शिक्षा की त्रुटि मनोगत हो जाती है। किन्तु ध्रुवपद-गायन-प्रणाली

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अपने निश्चित स्वरूप में बड़े से बड़ा परिवर्तन गायकों के द्वारा किये जाने पर भी ध्रुवपद कैसे कहलाता और बना रहता है, यही एक बड़े आश्चर्य की बात है। शास्त्र की मर्यादा शब्द के अर्थ को क्या बदल सकती है ? क्या सीमा अपने क्षेत्र का उल्लंघन करने के पश्चात् अपने शब्द का प्रयोग पा सकती है ? क्या रीति कुरीति में बदलने पर रीति कहला सकती है ? नहीं, तो फिर ध्रुवपद भी अपनी निश्चित मर्यादा, सीमा और रीति के किसी भी परिवर्तन पाने पर ध्रुवपद कहलाने का अधिकार नहीं रख सकता। यही मेरे विचारों का निचोड़ है।

आज से शताब्दियों पहले कुछ लोगों के सिद्धांत से गत शताब्दी के अंत तक दक्षिण की गायन-प्रणाली में वर्त्तमान के समान कण्ठ की कंपित क्रियाएँ स्वरों को क्षुब्ध करने वाली ऐसी नहीं की जा सकती थीं और जो कुछ मूर्छना गति पल्लवी नाम के गीत की पंक्तियों में यथास्थान दी गयी गति में ही केन्द्रित थीं, वे भी सीमित थीं और उनकी संज्ञा एवं परिधि निश्चित थी, जो केवल श्री त्यागराज जी की कृतियों में ही केंद्रित थीं और यह परिवर्तन गायन का था। भाषा में जो प्रांतीयता के प्रयोग हैं उनमें क्वचित् अक्षरों को यदि हम निकाल दें तो उनके (दक्षिण के) प्राचीन गीत ध्रुवपद के समान प्रतीत होंगे।

मुझे सर्वप्रथम श्री बाल मधुसूदनाचार्य आयंगर, वेद-विद्यावाचस्पति, ध्रुवाचार्य, वीणाकार के द्वारा दक्षिण के वर्णगीतों, दिव्य प्रबन्धों, पदं और पल्लवियों की शिक्षा वीणा बजाकर कण्ठ से गाने की शिक्षा में दी गयी थी। उन गीतों पर प्रौढ़ावस्था प्राप्त करने के बाद जब मैंने विचार किया तो मुझे सरलतापूर्वक यह ज्ञान हुआ कि आज से सौ-दो सौ वर्ष पहले समस्त भारत की गीत-प्रणाली जो भारतीय ब्राह्मण जातियों में थी, वह एक ही थी और ऐतिहासिक महत्ता को लेकर हम जितने पीछे हटते हैं संगीत विद्या में कण्ठ की कला और साहित्य के विचार को भी माता शारदा ने एक ही अंचल से ढांका था। व्यंकटमुखी एवं त्यागराज कल्पनाकारों में संगीत के परिवर्तन में दक्षिण के प्रसिद्ध व्यक्ति हुए। किन्तु वहां पर प्राचीन-काल से लेकर आज तक ऐसे भी विद्वान् और साधकों की टोली रही है जिन्होंने इन दोनों की परिवर्तित प्रणाली की अपने वंशजों को संगीत शिक्षा नहीं सीखने दी। वे वैदिक एवं पौराणिकता से संबंधित संगीत ही साधते आये। किन्तु वे इसे बड़ी सरलतापूर्वक सभा में संगीत शास्त्रार्थ में कर दिखलाते हैं। फलतः संगीत-प्रवाह के दो किनारे समय की गति से दूर होते गये। और अब तो दोनों, इस कछार के एक छोर पर हम और दूसरे पर वे हैं, बीच में नाद-उदधि अथाह है ही। कण्ठ की कला दोनों कछारों पर अपने परिवर्तन का कलाप परिणत करने में प्रस्तुत है। उत्तर भारत की संगीत-कला पर परशियन संगीत के संपर्क से जो अंतरभेद हो गया है उससे

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

बहुत-सी उत्तमता नष्ट होकर बहुतों के मत से कला में कहीं-कहीं पर कलंक भी प्राप्त हुआ है। बहुत-से कलंक तो ठीक ही हैं। कारण, हमने उन कलंकों को अपने सच्चे संगीत का रूप दे रखा है, यद्यपि उसे सभी लोग जानते और समझते ही हैं किन्तु उनका निवारण न नयों में से कोई कर सकते हैं, न पुरानों में से ही। जहां तक सिद्धान्तों का प्रश्न है उसे संगीतज्ञों में जो शिक्षित जन हैं वे भाषण व लेखनी द्वारा शास्त्रों की उत्तम धारणा प्राचीन संगीत के प्रति सदा ही उपयोग में लाते हैं। किन्तु कर्तव्य जिसे संगीत की क्रिया कहनी चाहिए उसमें शास्त्र का लेशमात्र भी नहीं रहता। कारण, हम ऐहिक साधनों को लक्ष्य मान कर-उचित अनुचित के विचार को समूल नष्ट कर चुके हैं और अब तो उसके अंकुर को भी न पनपने देने की धारणा पर तुल गये हैं। कला की धारणा को त्याग कर व्यापार के क्षेत्र में उतर आये हैं। व्यापारिक मनुष्य कभी भी अपने देश, कला संस्कृति की धारणा को निश्छल भाव से नहीं कर सकता। यह अकाट्य सत्य है, चाहे दंभ कितना हो किया जाय। सिद्धान्त और कला विषय कर्तव्य की अविचल धारणा को जीवन में उतारने को ही धर्म मानता है तभी यह समाज का सच्चा सेवक बन सकता है। हमें इस विषय की शिक्षा उन तानसेन-वंशजों की जीवनी से मिली है जिन्होंने कला के विशिष्ट रूप की रक्षा के लिए बादशाहों के दरबार की सुख-समृद्धि त्याग कर फ़कीरी ले ली, जैसे गुलाबसेन खां, साहब खा और मेरे जीवनकाल में गुरुवर्य श्री काले ख़ां और करामत खां। मैंने ध्रुवपद विषय की गायकी को लेकर जो भी साम्प्रदायिक चर्चाएं की हैं, उनके विषय में यह अवश्य बतलाना चाहता हूं कि मेरे हृदय में यह सिद्धांत और विचार जिन गुरुओं द्वारा गायन के रूप में प्राप्त हुए, वे हमारे नहीं बल्कि उन गुरुजनों के ही हैं जिनके विषय में उनके नाम सहित समय और काल, जहां तक मुझे स्मरण है, पाठकों को संतोष दिलाने के लिए मैंने उपस्थित किया है।

मेरे प्रथम गुरु से मुझे विशेषकर प्राचीन दाक्षिणात्य संगीत की शिक्षा वीणा के साथ दिव्य-प्रबंधम्, आल्वर-गीतम्, वर्ण और कुछ पल्लवी की हुई। इसके बाद ध्रुवपद-धमार की शिक्षा भी इन्हीं के द्वारा हुई। यह शरीर से बहुत लम्बे-चौड़े दक्षिणी ब्राह्मण थे। सर्वप्रथम इन्होंने व्याकरण-शास्त्र की शिक्षा ली और अपने पिता की आज्ञा से सामवेद का गान तीरुनालपत्तम् के एक आचार्य से आरंभ किया। साथ ही वीणा पर उसे बजाकर गाने की शिक्षा भारत-प्रसिद्ध वीणा शेषाण्णा जी से वेदाध्ययन के साथ ग्यारह वर्ष तक प्राप्त की। तदुपरांत एक व्याकरण-शास्त्रार्थ में श्री तान्त्या शास्त्री से हार जाने पर यह उनके शिष्य हो गये और उन्हीं के साथ काशी चले गये। एक बार शिव-अभिषेक पर जयपुर

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

के महाराजा रामसिंह जी ने भारत के विद्वानों को बुलवाया। श्री तान्त्या शास्त्री जी के साथ स्वामी जी भी आये। यहीं पर इन्हें विद्वानों ने रख भी लिया था। कारण, यह सेनियों के खलीफा श्री हैदरसेन जी का ध्रुवपद-गान सुनकर उनके शिष्य हो गये और दस वर्ष तक इन्होंने ध्रुवपद-गान सीखा। ध्रुवपद के विषय में दिये सेनियों के इतिहास और ध्रुवपद-गान के सिद्धान्त, इसी के समान दाक्षिणात्य संगीत की प्राचीन परम्परा और उसका सिद्धान्त इन्हीं आचार्य की कृपा से हमें क्रिया-सहित प्राप्त हुआ, जो पुस्तकपाठी जिज्ञासुओं के सम्मुख आ चुका है। तानसेन-वंशजों की ध्रुवपद-प्रणाली की शिक्षा के विषय में जो भी चर्चाएं दी गयी हैं, वे सभी श्री मधुसूदनाचार्य आयंगार वेद-विद्यावाचस्पति ध्रुवपदीय वीणाकार की ही शिक्षा से हमें प्राप्त हुई हैं।

द्वितीय गुरु, फतेहपुर-सीकरी-निवासी उस्ताद श्री नजीरसेन जी, जो तानसेन-वंशज थे, इनसे पुराने ध्रुवपदों के साथ सेनियों की शिक्षा में किन-किन आचार्यों के गीत हैं और इससे कितने घराने बने, इसके विषय में बहुत प्रामाणिकतापूर्वक इतिहास एवं गायकी की परम्परा कण्ठ द्वारा उत्तरीय वीणा के साथ शिक्षा में प्राप्त हुई।

तृतीय गुरु, जयपुर के करामत खां जी हुए। इनसे कुछ चीजों को तथा राजस्थान में किस-किस राज्य में पुराने संगीतज्ञों का केन्द्र रहा और तानसेन-वंशजों से ही सुनकर लोगों ने अपने-अपने घराने बनाए और ध्रुवपद गाने की क्रिया में भी कई प्रकार से अंतर किये, उसे सीखने-समझने का अच्छा इतिहास प्राप्त हुआ।

चतुर्थ गुरु उस्ताद काले खां जी ध्रुवपदीय (कालपी घराना) हुए। यह वंश तानसेन-वंश से ध्रुवपद-गायकी में कुछ और विलष्टता की ओर बढ़ा, जिसे कि यह लोग ध्रुवपद पढ़ना, ध्रुवपद के खांचे भरना, लयों के गुंथाव, स्वर और अक्षर के अंतःभेदी सूक्ष्मतत्त्व में जा मिले। इस वंश के साहब खां जी, गुलाबसेन जी, गोपी खां जी ब्रजवासी हो गये। साहब जी के बहनोई मदे खां, इमाम खां कालपी से गदर के बाद पूरब में खजुर गांव जा बसे। उनके भानजे आजम खां जी बहुत बड़े ध्रुव पदिये थे। मदे खां के बेटे नब्बू खां, इनके पुत्र नजीर खां, मान खां, महमूद खां थे। यह तीनों भाई ध्रुवपद गाने में और वीणा बजाने में अद्वितीय थे। आजम खां के पुत्र अब्दुल गनी साहब भी हमारे सामाजिक गुरु थे।

ध्रुवपद-गायकी में जहां तक प्राचीनता की पुष्टि और उपासना की गयी है उसमें कालपी-घराने की गायकी में हमें एक विशिष्टता अधिक प्रतीत हुई, जिसे ध्यानपूर्वक देखने से ध्रुवपद के पहले जो प्रबंधगान था, उससे भी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पूर्व मंत्रोच्चार-क्रिया को कालपी घराने ने फिर से ध्रुवपदों में भरा, यद्यपि इस घराने में जहां तक ध्रुवपद गाये जाते हैं, वे सब पुराने ही हैं। इस घराने ने रचना के क्षेत्र में स्वल्प चिन्तन किया। इनकी विशेषता है, उन्हीं-पुराने ध्रुवपदों को गाने के अनेक अंग जो छूटते जा रहे थे, उसी पर इस घराने ने पुनः ध्यान देने की तीव्र चेष्टा की। यदि हम ऐसा कहें कि गायकों के स्वतंत्र बढ़ते हुए मनोवेग के अनियमित अरक्षित अश्व को कालपी घराने ने लगाम लगायी तो अनुचित अथवा अत्युक्ति न होगी। कालपी-घराना और इसके ध्रुवपद-विषयक् सिद्धान्त पर मैंने जो कुछ विचार पाया उसमें मैं उस गुरु की ही वार्ता को जिज्ञासुओं के सामने रख रहा हूं।

एक बार उस्ताद काले खां जी ध्रुवपद की आसावरी सिखा रहे थे। उसी समय मेरे कंठ के और अपने कंठ के स्वरोच्चार के स्वरूप पर उन्होंने अपने विचारों को कहना आरंभ किया। वे बोले कि 'बेटा, तुम पंडित हो! जैसा कि शब्दों के अक्षरों के रूप कौमुदी से पढ़ाते समय गुरु ने समझाये होंगे, कि कौन-सा अक्षर कितने काल का उच्चारण रखता है और उस अक्षर के उच्चारण का स्थान कौन-सा है, वैसे ही ध्रुवपदियों में कालपी-घराने के साधकों ने बड़ी बारीक नजर से देखा है। कौन-सा स्वर किस स्थान से बोलने पर सही रूप बतायेगा और कौन-सा अक्षर कितने मात्रा का मिलान स्वर से रखता है, जिस गानेवाले ने इसको विचारपूर्वक नहीं सीखा, साधा, वह गवैया अंधा है। स्वर के मिलान को लय, अक्षर, मात्रा काल और उसके भाव को एक करने में जो सांसें रखी जाती हैं, उन्हें समझना सबका काम नहीं। इसी को कर दिखलानेवालों में कालपी-घराने के ध्रुवपदियों ने तानसेन-वंशजों से इज्जत पायी है। जैसे तुम समझो, कि स्वरों के गंभीर रूप, स्वरों के रौद्र रूप, स्वरों के करुण रूप, स्वरों के उच्छृंखल रूप, स्वरों के सरस रूप, स्वरों के श्रृंगार रूप, स्वरों के सहज रूप, स्वरों के रसज्ञ रूप और स्वरों के संघर्ष रूप, जैसे कि ध्वनि का घोर होना यह भी एक साधना है कि उसके निखार को हम गाते समय सम्मुख रखें तभी हमने गायन की कला को सीखा और समझा।' ठीक इन्हीं शब्दों में लयों के भी मर्म को उन्होंने कई प्रकार के तालों को लेकर समझाया। इन्हीं शब्दों के संयोग-नियोग में उन्होंने लयों के भी रूप को संयुक्त करके कहा कि जनसाधारण को हम जिस प्रकार के गायन की अभिरुचि देंगे, लोग उसी पर अपना ध्यान लगाकर सुने और समझेंगे। वे कहने लगे कि गिद्धौर-महाराज श्री गुर प्रसाद सिंह जी इन सब बातों पर विचार कर कई सेनियों को रखकर ध्रुवपद गाना तथा बीन, सरोद बजाना सीखे।

एक बार एक जलसे में महाराज ने मियां जान का गाना सुना। कुछ

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

देर बाद महाराज ने कहा कि आपके गले से स्वर का वजन उड़ गया है। इसी प्रकार उन्होंने नवाब मीर गदहिया के साथ आये हुए हद्दू खां का गाना सुना और सुनकर बोले कि आपके सभी स्वर एक-से लगते हैं। आप राग-स्वर की प्रकृति को क्या अपने गुरु से नहीं सीखे? कहते हैं, इसे सुनकर हद्दू खां जी को बड़े महम्मद अली खां जी ने कई ध्रुवपद सिखलवा कर दरबार में फिर से गवाया। किन्तु महाराज ने यही कहा कि स्वर के स्थान ही ढीले हैं।

महाराज-गिद्धौर श्री गुरु प्रसाद सिंह प्रत्येक विषय के महान् ज्ञाता थे। इन्हें विद्या-व्यसनी कहा जाता है। महाराज डुमराव ज्योतिष और साहित्य के विशेषज्ञ माने जाते थे। बनारस के प्रसिद्ध सुधाकर द्विवेदी और बाबू भारतेन्दु हरिश्चंद्र यावत्-जीवन इनके दरबारी रहे और महाराजा ने इन दोनों को रईस बनाया, इनको अपार धन दिया। किन्तु संगीत के गुणियों को अत्यधिक द्रव्य देनेवालों में और उनके संगीत-कला के मर्म को सीखने, समझने और परख करने में महाराजा बेतिया, आनंद किशोर-नवल किशोर, महाराज रामसिंह जी जयपुर-नरेश, नवाब टोंक इब्राहीम खां, महाराज शिवदान सिंह अलवर-नरेश, महाराजाधिराज श्री चंद्र शमशेर जंगबहादुर नेपाल, नवाब रामपुर हामिद अली खां—ये सभी राजा संगीत-विद्या के बड़े ही रसिक, ज्ञाता, मर्मज्ञ, साधक एवं पंडित थे। इनमें से कोई न कोई विशेषतया बीन, सरोद, सुरसिंगार, रबाब के गुणियों को अधिक संख्या में रखते और सुनते-सीखते भी थे—जैसे जयपुर के महाराज रामसिंह जी, खेतड़ी के राजा अजीत सिंह जी, गिद्धौर के महाराज श्री गुरु प्रसाद सिंह वीणा और ध्रुवपद के सिद्धान्त-वेत्ता हो गये। ये तीनों ही व्यक्ति थोड़े ही समय-काल के अंतर में हुए हैं।

मेरे विचारों का निचोड़ इन्हीं साधकों के दिये गये आधार से आधृत है। यह बात सत्य है कि स्वर की गति, लय की गति, ध्रुवपद की गति जब तक एकाकार होकर नहीं चलेगी, तब तब वह ध्रुवनाम निश्चित गति को प्राप्त नहीं कर सकती है। यही मेरे आंतरिक विचार हैं। ध्रुवपद के विषय पर जो शाब्दिक अलंकारों में हमने पूर्व में बातें लिखी हैं, उनका त्याग करना उसी प्रकार है जैसे कि किसी भगवत्-स्वरूप से रत्नों-आभूषणों को उतारकर लंगोटी पहना देना। कालपी-घराने के सिद्धान्त में जिस प्राचीनता की स्थापना मैंने अपने विचारों के अनुसार अथवा ध्रुवपद-गायकी का निचोड़ माना है, उससे हमारे गुरुवर्य हाफिज अली खां साहब, सरोद-नवाज अत्यधिक सहमत हैं। हमारी शिक्षा आपके द्वारा सन् 1937 के मध्य से आरंभ हुई और 1941 तक एक रूप में चलती रही। मैं जिन दिनों आपके पास आया था, इसके पूर्व श्री स्वामी जी करामत खां जी, नजीरसेन जी, काले खां जी जैसे प्राचीन गायकों से ध्रुवपद और बीन की शिक्षा

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्राप्त कर साधना के क्षेत्र में उतर चुका था और प्रथम गुरु की आज्ञानुसार वर्ष में तीन बार पर्यटन को भी निकलता था। इसी पर्यटन में भारत के बहुत-से गुणियों से सुनने-समझने का अवसर मिला। इस कारण खां साहब से सरोद-शिक्षा के साथ-साथ ध्रुवपद और वीणा के गायन-वादन की प्रणाली पर सैद्धान्तिक वार्तालाप में विचारों का आदान-प्रदान होता रहता था। यद्यपि हाफिज अली खां सरोद के ही घरानेदार विशेषज्ञ माने जाते थे। किन्तु उक्त समय में इनसे बहुत बार की वार्ता में मैंने यह धारणा पायी कि इन्हें ध्रुवपद-गायकी के सिद्धान्त का ज्ञान और विचार है। यद्यपि यह मेरे गुरु हैं और इनके पास सीखने से ऐसा लिखना उचित नहीं, परन्तु जहां पर विद्या का तर्क है, वहां अवस्था-भेद और शिष्यत्व दोनों को ज्ञान के पलड़े पर रखकर वार्तालाप आरंभ होता है। यह भी मेरे इस विचार से पूर्ण सहमत और अनुगामी हैं कि ध्रुवपद की गायकी, जिस प्रकार की व्याख्या को मैंने इस पुस्तक में प्राचीन गुरुओं के नाम, गुण, साधना, वंश और परम्परा के सहित दिया है, हाफिज अली साहब हमारे विचारों से पूर्ण सहमत हैं। इस विषय पर यह अपने विचारों को कहकर बहुत बार अनेक गायकों की गायकी और नाम की चर्चा करके वड़ी अवहेलनापूर्वक उनके ज्ञान की भर्त्सना करते और खिल्ली उड़ाते थे। इन्होंने मेरे आग्रह से कई संगीत-कान्फ्रेंसों में ध्रुवपद को लेकर वार्ता-चर्चा भी की और लोगों ने उसमें बड़ी सहानुभूति प्रकट की, जिसके फलस्वरूप ध्रुवपद गवाये जा रहे हैं। किन्तु मेरे तो क्या इनके सिद्धांतों की भी कोई बात उन गायकों में लेशमात्र नहीं है। ध्रुवपद-गायकी के सिद्धान्तों के विचारों को हाफिज अली खां साहब ने मथुरा के राग-विद्या के प्रसिद्ध विद्वान् श्री गणेशी लाल जी महाराज से प्राप्त किया और तानसेन-दौहित्र वंश के प्रसिद्ध महागुणी उस्ताद वजीर खां साहब ध्रुवपदीय से सीखा। इस प्रकार मेरे-इनके विचारों का संतुलन इन महान् गुणियों के मार्ग पर ही है।

कालपी घराने के लोग हमेशा जोड़ी से गाते थे, जिसमें नोम्-तोम् आलाप के मुख्य अंग को गायक साधारण गाता था और साथ का व्यक्ति वीणा के द्वारा प्रस्तार किया करता था। जब इन लोगों में से वीणा का बजाना किसी शिक्षा की कमी से उठ गया तब ये लोग मात्र ध्रुवपद गाकर ही अपना गायन पूरा करते थे। इसी प्रकार का क्रम बंगाल के विष्णुपुर-घराने में भी था कि गायक अल्प परिमाण में नोम् तोम् की साधारण-सी स्वरावली स्थापित कर ध्रुवपदों को विशेष ही गाते थे। कालपी-घराने से विष्णुपुर-घराने में एक बात का अंतर था। कालपी-घराने के लोग बहुत ही गहरी लय में गाते थे और ध्रुव-पद में ही दिये गये स्वरों को इतने में विस्तृत करते थे जिससे कि वे नोम्-तोम्

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

की महत्ता को मिटा देते थे किन्तु जहां तक मैंने इसे विचारा और साधा, उसका निर्णय मैंने यही देखा कि यह काम प्रत्येक ध्रुवपदिये के वश का नहीं हैं। इसमें इतने लम्वे श्वांस, स्वरों के एक से दूसरे तक पहुंचने में स्वर को इतना मिलाना और सजाना, साथ ही इतनी गहरी लय में अक्षरों के मात्रा-काल को गीत के भाव के साथ संपूर्ण ध्रुवपद में सुरक्षित और सुशोभित रखना अत्यंत कठिन और असाध्य है। इसी कारण विशुद्ध डागुर वाणी नाम की गायकी का नाम भी गायकों में नहीं रह गया। बंगाल-घराने के प्रसिद्ध श्री राधिका गोस्वामी भी इस रीति से गाते थे किन्तु उनके शिष्य अघोर बावू उस लय और श्वांस को नहीं पा सके। अघोर बावू के शिष्य श्री कुटे गोपाल और राधिका गोस्वामी के शिष्य दीक्षित जी दोनों ही से मैंने दो वर्ष सीखा किन्तु ये दोनों ही व्यक्ति स्वरों के मिलान और श्वांस की साधना में असफल होने के कारण ध्रुवपद की दुगन और आड़ भी गाने लगे थे। इन लोगों से पहले-पहले ठायदून और आड़ इनके घराने में नहीं था, ऐसा यह कहते थे।

ध्रुव के सिद्धान्त मेरे विचारों के अनुसार कालपी-घराने ने भारतीय प्रभावों से पूर्ण और वैदिक क्रियाओं के प्रमाण से स्वरोच्चार के गतिकाल को बहुत उत्तम रीति से समझा और सुरक्षित रखा है। प्राचीनकाल में ध्रुवपद की तानों की श्वांस-क्रिया अवश्य थी, जो स्वर, श्रुति, लय, मात्रा, अक्षर और शब्द के भाव से पहले नहीं तोड़ा जाता था क्योंकि वह खंडित गति-दग्ध-श्वांस-दोष 'संगीत रत्नाकर' तथा 'गांधर्वोपनिषद्' के आधार पर हमें भी श्री स्वामी जी नजीरसेन, काले खां से शिक्षा में सुनने-सीखने को मिला।

कालपी-घराने की गायकी में ध्रुवपद पुराने ही हैं। केवल गाने का भेद इन्होंने अन्य ध्रुवपदियों के समान नहीं वदला। प्रायः इनके ध्रुवपदों की गायकी तटि-सम्प्रदाय के महात्माओं के संरक्षण में चलती रही। काले खां जी नोम्-तोम् किसी भी राग का अधिक से अधिक चार-पांच मिनट ही करते थे। उसके वाद उनके ध्रुवपद चलते थे। यह गौवरहारी शुद्ध वाणी के गायक थे, यद्यपि इन्हें चारों ही वाणी के बहुत-से ध्रुवपद याद थे। इसके सिद्धान्त और विचार से दुगन इत्यादि किसी भी वाणी के ध्रुवपद में नहीं हो सकता। खंडहारों के छूट और पकड़ अवश्य हैं; किन्तु इनका कहना यह था कि जब तक बीन की पूरी तालीम रीति से सीखकर गले पर न साधी जाय, खंडहार वानी की गायकी कभी भी कोई रीति से नहीं गा सकता। इस विषय में श्री काले खां, करामत खां, नजीरसेन और मुंशी महम्मद हुसैन से इन्हीं बातों की पुनरावृत्ति मैंने पायी। उस्ताद हाफिज अली खां भी गौवरहारी की उपर्युक्त वातों को ही अपने विचारों का सिद्धांत मानते है और अन्य वाणियों में भी यह मेरे विचारों से सहमत हैं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

किन्तु इसके अनुकूल अपने विचारों को ध्रुवपदिये तभी कार्य में लाने में सफल हो सकते हैं जबकि उन्हें एक राग में ठीक रीति से जो भी ध्रुवपद याद हों उन्हें वे निजी कल्पना से न बिगाड़कर शुद्ध रूप से गाकर रीति का समर्थन करें।

अनेक लोगों के विचारों में ध्रुवपद-गान पर कुछ बातें सुनिए! कुछ लोगों का कहना है कि ध्रुवपद एक प्रकार का भजन है, जो पुराने विचारों के हिन्दुओं के धार्मिक गीत जो मंदिरों में गाये जाते हैं; उसमें कुछ कला-विशेष नहीं है, जैसा कि मुसलमानों के प्रभाव में आने के बाद संगीत को एक विशेष देन मिली। कुछ लोगों ने अपने विचार में ध्रुवपंद और पखावज के साथ झगड़ने को ही गीत मान लिया है और वे इसे स्वल्प स्वरों के आधार पर रखकर पखावज के साथ जूझने को ही ध्रुवपद की विशेष कला मानते हैं, चाहे इसमें ताल की कोई कला न हो। कुछ ऐसे विद्वानों के विचार भी हैं कि ध्रुवपद सामूहिक प्रार्थना का एक कोरस-गीत है। जब लोग किसी धार्मिक यात्रा में जाते थे, तो मार्ग-श्रम की निवृत्ति के निमित्त सामूहिक गान होते हुए जाते थे। यह कल्पना जितनी व्यर्थ है उतनी ही एक बड़े ख्याति-प्राप्त व्यक्ति की भी है, जो बड़े शास्त्रज्ञ माने जाते हैं। कुछ लोगों के ऐसे विचार भी हैं कि ध्रुवपद भी पुराने गानों में से ही है। मात्र इतना ही है कि परिवर्तनशील संगीत एवं परिवर्तनशील जनरुचि-पूर्ति की आवश्यकता पर गायक को ध्यान देना आवश्यक है। कुछ ऐसे ध्रुवपद-गायक भी हैं, जो जनरुचि के वाहन हैं। किन्तु मेरा विचार यह है कि कला-प्रदर्शक अपने को और अपनी कला को जनरुचि का वाहन बनाकर, समाज, कला और कलाकार के पवित्र कर्तव्य की ओर ध्यान नहीं दे रहे हैं। यह भ्रम है, प्रमाद है। यदि कलाकार के विचार ही कला की विशिष्टता के विचार को अल्पता देकर अपने को कला के आधार पर जनरुचि का वाहन बना लिया तो मैं पूछता हूं कि फिर कला-विषयक् विचारों को कौन साधकर उसके मार्ग को प्रस्तुत करेगा? क्योंकि कलाकार ने तो अपने को अव्यवस्थित जनरुचि की पूर्ति के हाथ बेच दिया तब सैद्धान्तिक कार्य को कला के क्षेत्र में समाज का प्रतिनिधित्व करनेवाला संगीत कौन देगा? जिस पर कि यह विश्वास किया जाय कि यह अव्यवस्थित अनुचित जनों के समूह की क्षणिक रुचि का विक्षिप्त वाहन न बनकर कला-विज्ञ हो, समाज के जन को कला के मर्म की ही क्रिया को विद्या, विवेक, साधना के शास्त्र का दर्शन हम विद्यानुरागियों को प्रदान करेगा। यही मेरे अंतः के विचार हैं। कलाविद्या के ध्रुवपदादि छन्द-प्रबन्धों की समीक्षा में जो मेरे द्वारा सिद्धान्तों का विवेचन किया गया, उनमें अनेक गुणियों के नाम, जीवन, काल, विद्या, कला, साधना; उनके देश, प्रान्त, वंश एवं गुरु-परम्पराओं की भी आवश्यक प्रामाणिक

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

स्थान उपयोगी जानकार और विद्या-मर्म के सेवियों के हितार्थ दी गयी है और जहां तक मुझे विश्वास है, उन्हीं के मार्ग पर कुछ अन्य विचार मैंने दिये हैं। इन चर्चाओं से सहज रूप में सभी को प्रामाणिक संतोष गुणियों के सिद्धान्तों के सहित परिचय तथा कई प्रकार की बातें जो क्रिया के द्वारा समझने में कठिन हैं, वार्ताओं से सहज में समझने को मिल जायेंगी, जिससे कि मेरी दृष्टि में जिज्ञासुओं का का ज्ञान-संवर्धन होना सिद्ध है।

भारतीय गायन-प्रणाली में ध्रुवपद-गायन आर्य संस्कृति के सर्वोत्कृष्ट सांस्कृतिक गायन और गीत-विधा के उस अंतःभेदी मर्म का एक निखरा हुआ रूप है, जिस पर कि भारतीय गीत का धवल ध्वज फहराता है। कलाओं में नाद को ब्रह्म-विद्या माना गया है। कहा भी है—

नत्वा ब्रह्ममयं स्वरं हरिहरौ देवौ श्रुतीन्वोधरं,
गान्धर्वः श्रुति साम गायन वरं श्रीनारदं तुंबुरु।

और मैंने जो गीत को सिद्धान्त का मूल रूप उपासना माना है, उसके लिए कहा है—

जपात् कोटि गुणं ध्यानं, ध्यानात्कोटि गुणं लयः,
लयात् कोटि गुणं गानं, गानात् परतरं नहि।

यदि किसी ने इतने पर भी मेरे सभी विचार मान लिए, तो मैंने गुरुओं के दिये ज्ञान के अनुशासन के परिधान से अज्ञान की नग्नता को अवश्य ढांकने का प्रयत्न किया है। कहा भी है—

राग्यम् ऋषीणाम् चरितानि तानि कृतानि पुत्रैं रक्तानि पूर्वैः।

—श्री अश्वघोष

अस्तु मात्र कला-विद्या की शुद्ध परम्परा को सुदृढ़ और सुनियमित रूप पुनः प्रदान करने के ध्येय, लक्ष्य और विचार को ही निश्चित करने के निमित्त विद्या को विवेक की दृष्टि से देखने, सुनने, सीखने, और साधन करनेवाले जिज्ञासुओं के हितार्थ गुरुजन, श्रुति-सम्मत ऐतिहासिक क्रिया और कला के सुविचारपूर्ण साधकों की विवेक-चर्चा और जीवनी का जिज्ञासुओं को समुचित ज्ञान देने के अभिप्राय से मैंने इस पुस्तक में अपने ज्ञान के संग्रह-कोशों के अनेक परचें, गुरुओं के पत्र, पुराने ध्रुवपद-धमार, छन्दगान के कथानक, जो भी ज्ञान जिस व्यक्ति के द्वारा मुझे मिला, उसे उसके नाम सहित मैंने दिया है। जो लोग ज्ञान के व्यूह से अपरिचित अनुभव एवं साधनहीन जनसाधारण में ख्याति-प्रिय गायक वादक बन नाम-नौका पर आरूढ़ हो साथियों के सहित गुरुओं के गौरव को पक्ष

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

के पतवार से लाद स्वयं डुवाना चाहते हैं उनकी भ्रमवश भूल करने की चेष्टा को रोकने का प्रयत्न मैंने अवश्य किया है क्योंकि सारा देश और सारा समाज कला को संस्कृति का गौरवपूर्ण रूप मानता है। अतः कलाविद् वास्तव में कला-कोविद हो, यही श्री शारदा मां के चरणों में इस पुस्तक की मांग है। कहा भी है—

एतद्देश प्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः,
स्वं-स्वं चरित्रं शिक्षरन्पृथिव्यां सर्वमानवा : ।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

आम्रा
भरतनिधि

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi